ISSN 2815-8326

हिंदी त्रैमासिक

पहचान

देश से हम, हमसे देश

वर्ष 4, अंक 3, जनवरी- मार्च 2026, पृष्ठ संख्या 32

प्रधान संपादक: प्रीता व्यास

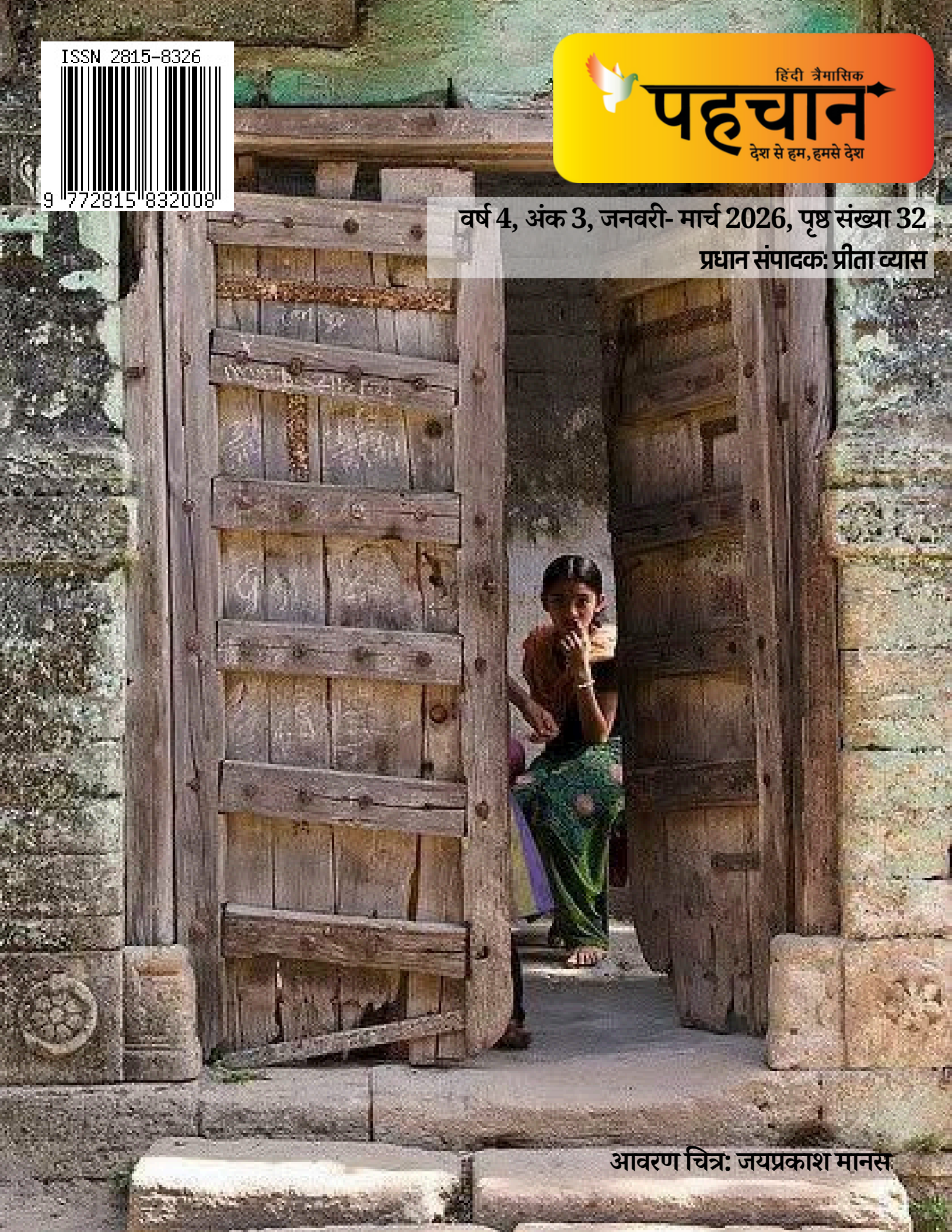

आवरण चित्र: जयप्रकाश मानस

जिन पंछियों को मार दिया है
तुमने अपने हथियारों से
वे परिचित थे
हथियाने - हड़पने की
तुम्हारी आदिम कुटिल प्रवृत्तियों से

फूँक आये थे वे नन्हे पंखों में
उड़ान के मंत्र
रख आये थे शिशु-होंठों पर
चोंच भर गीत आशाओं के

याद रखें
आशाएँ हैं आयुध
वे कहीं भी हों
कितनी भी छोटी हों
बदल सकती हैं पूरा युग।

- दीप्ति कुशवाह

पोस्टर : पंकज

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

संस्थापक/ प्रधान संपादक
प्रीता व्यास

सलाहकार संपादक
रोहित कृष्ण नंदन

ले आउट / ग्राफ़िक्स
प्रिया भारद्वाज

कवर पेज
जयप्रकाश मानस

प्रकाशक
पहचान

आकलैंड, न्यूज़ीलैंड

editor@pehachaan.com

डिस्क्लेमर

पत्रिका में प्रकाशित लेख, रचनाएं, साक्षात्कार लेखकों के निजी विचार हैं, उनसे प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं. रचनाओं की मौलिकता के लिए लेखक स्वयं ज़िम्मेवार है. कुछ चित्र और लेखों में प्रयुक्त कुछ आंकड़े इंटरनेट वेबसाइट से संकलित किए गए हो सकते हैं.

दो शब्द

लीजिये एक और साल कैलेंडर से उतर कर चल दिया. 2025 भी विगत हुआ. बहुत से युद्ध, बहुत सी प्राकृतिक आपदाएं, बहुत सी राजनीतिक उथल-पुथल, बहुत सी कटुताएं इस वर्ष की स्मृति रहेंगे.

प्रकृति ने भी समूची पृथ्वी पर अपनी नाराज़गी के स्पष्ट संकेत दिए हैं, म्यांमार का भयावह भूकंप, फिलीपींस का तूफ़ान, हिमाचल क्षेत्र की बादल फटने की घटनाएं सब इस नाराज़गी के प्रमाण हैं. गुजरात विमान हादसे सहित कई अन्य विमान दुर्घटनाएं हमारी क्षमता की सीमा याद दिलाती हैं.

'जो बीत गई, सो बात गई' ये कथन तो सत्य है लेकिन ये भी सत्य है कि कैलेंडर बदलने भर से दिन नहीं बदल जाते. जो भूमिकाएं जाता साल बना कर गया उसका असर रहता है आते साल पर लेकिन हमारा प्रयास ये होता है साल के आरम्भ से ही कि कुछ सकारात्मक विचार ले कर आगे बढ़ें. मुझे नफ़स अम्बालवी जी का एक शेर याद आ रहा है-

"मुकद्दर जो भी हो लेकिन हमारा हौसला देखो
कि हमने हर बरस से इक नई उम्मीद बांधी है."

जहाँ सब कुछ गड़बड़ा रहा हो वहां हौसला बनाए रखा सचमुच हौसले की बात है, लेकिन सिर्फ उम्मीद बाँधने से कठिनाइयां हल नहीं होतीं उनके लिए कर्म अनिवार्य होते हैं, दृढ़संकल्प की आवश्यकता होती है. तो हम संकल्पित हों कि यथासंभव अपने पर्यावरण को, अपने परिवेश को, संबंधों को संभालेंगे.
"पहचान" के प्रति आपका स्नेह इस नए साल में और गाढ़ा होगा ये उम्मीद करते हैं. आपका साथ शक्ति है. जुड़िये, जुड़े रहिये और अन्य लोगों को भी जोड़िये.
शुभकामनाओं सहित-

प्रीता व्यास

इस अंक में ...

पाठकीय प्रतिक्रियाएं 5

आलेख

उत्तरैणिक कौथिक (भूपेंद्र बिष्ट) 6

चाय के जादुई स्वाद का ब्रह्मांड से कनेक्शन (जसबीर सिंह सिक्का) 7

हिंदी की उदारता ही उसकी ताकत है (बाबूलाल दाहिया) 8 - 9

साहित्य और स्त्री सशक्तिकरण (तूलिका मिश्र) 10 - 14

खरीदारी की लत एक समस्या (प्रीता व्यास) 15 - 17

लघु कथा

गुरु बड़ा या वकील (राकेश मौर्य) 18

गुरु तो गुरु होते हैं (सोमदत्त द्विवेदी) 18

कहानी

चलो चलें गांव की ओर (हरी राम यादव) 19 - 22

ग़ज़ल

महेश कटारे सुगम 23

दानिश भारती 24

शारिक कैफ़ी 25

कविता

बिब्लियोस्मिया (राजेश्वर वशिष्ठ) 26

हम लोग जो अब तक ज़िंदा हैं (सुरजीत होश बड़सली) 27

आदतों पर कसी लगाम के साथ (माया मृग) 28

बाल कहानी - अनोखी सजा (रन्दी सत्यनारायण राव) 29

बाल कविता - खड़क - खड़क (त्रिलोक सिंह ठकुरेला) 30

पुस्तक समीक्षा - (समीक्षक: अंकित राजपूत) 31

बहुत सुंदर पत्रिका "पहचान" जिसमें हर पहलुओं का समावेश हैं. मुझे ऐसी ही पत्रिका का इंतजार था. जिसमें एक साथ सब कुछ मिल जाये कला, साहित्य, स्वास्थ्य, कहानी, काव्य, लेख, आस्था इत्यादि.

निर्मिति झा, आस्ट्रेलिया

"पहचान" में लोक जीवन और लोक साहित्य से जुड़े आलेख मन को बड़ी प्रसन्नता देते हैं. बड़ा महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं आप इस घरोहर को जीवित रखने का. आपकी यह सक्रियता और प्रतिबद्धता अन्यतम है. मैं तो कहूंगा कि लोकजीवन से जुड़ने और जानने की दिलचस्पी जिसको भी हो उसे अंतर्राष्टीय हिंदी त्रैमासिक "पहचान" से अवश्य जुड़ना चाहिए.

कैलाश नरूका, इंडिया

संस्कृत मृत भाषा नहीं है" अच्छा लेख है. भाषा विज्ञान में मृत भाषा उस भाषा को कहा जाता है जिसका कोई बोलने वाला शेष ना बचा हो. आज के समय में संस्कृत कोई बोलता ना हो वैसे लेकिन कोई त्यौहार आने दीजिये, छांट-छांट के सन्देश भेजते हैं लोग संस्कृत में चाहे उनको खुद भी उसका अर्थ समझ में ना आ रहा हो. "शुभं करोति कल्याणम" किस्म की संस्कृत वे अपने संदेशों में भेज रहे होते हैं और असलियत यह है कि वे संस्कृत का कुछ नहीं जानते. ग्रंथों के खजाने हैं इस भाषा में. हर घर में कम से कम एक व्यक्ति को तो संस्कृत आना चाहिए.

पं. जनार्दन आचार्य, अमेरिका

"पहचान" की वेबसाइट आकर्षक है. कृपया हर माह कुछ सामग्री दिया करें. अक्टूबर- दिसंबर 2025 का कवर पेज बहुत पसंद आया. चित्रकार मोहम्मद अहसन जी को हमारी बधाई दीजिये.

अदनान कुरैशी, मलेशिया

बाबूलाल दाहिया जी का लेख "बघेली लोक साहित्य में ज्यादा बड़ा मज़ेदार लगा. आज से चालीस- पैंतालीस साल पहले का गाँव का जीवन याद हो आया. एक बार बहुत मेहमान आ गए थे पड़ोसी के घर विवाह में तो उनमे से कुछ के सोने का इंतजाम हमारे घर हुआ और बिना झिझक के अम्मा ने पुआल पर चद्दर डाल के व्यवस्था कर दी और मेहमान भी बिना ना- नुकुर के सो गए. बढ़िया पत्रिका निकालती हैं आप. साधुवाद.

अवधेश मिश्र, इंडिया

सुंदर रचनाओं का संग्रह हुआ करता है पहचान का हर अंक. अति मनमोहन और ज्ञानवर्धक भी.

सोमनाथ गुप्ता 'दीवाना रायकोटी', न्यूज़ीलैंड

परदेश से स्वभाषा प्रेम का जीवंत प्रमाण है यह पत्रिका. अपनी राष्ट्रीय अस्मिता,संस्कृति की पहचान को बचाये रखने के लिए किसी भी को अपनी भाषा में अपनी भावोभिव्यक्ति को ही प्राथमिकता देने श्रेयस्कर है.विधा कोई भी हो,अपने कथ्य विषय में अपनी जातीय अस्मिता की पहचान कायम रखना पहला दायित्व है. इसे पढ़कर सुख,आनन्द, गर्व तुष्टि सर परिपूर्ण हूँ. देश के मध्यप्रान्त के हृदयस्थल में कर्क रेखा गमन पथ पर आबाद छोटी महानदी, जिला कटनी की एक सुदूर गंवई से में एक किसान खेतिहर, अदना सा हिंदी सेवी, सेवानिवृत्त हिदी शिक्षक, कवि कथाकार आप सभी लेखकों को हार्दिक शुभकामना प्रेषित करता हूँ.

देवेंद्र कुमार पाठक, इंडिया

उत्तरैणिक कौथिक

भूपेंद्र बिष्ट

ज्योतिष शास्त्र 12 राशियों में मेष, कर्क, तुला तथा मकर को ज्यादा अहम आंकता है. इन्हीं राशियों के नाम पर तिथियों की संक्रांतियां भी हैं और सूर्य जिस राशि में प्रवेश करता है, तदनुसार ही संक्रांति जानी जाती है. पौष माह में सूर्य देव जैसे ही शीत के कफस की जड़ता को तोड़ मकर राशि में आते हैं तो मकर संक्रांति का पर्व मनाया जाता है. सूर्योपासना का सबसे बड़ा पर्व. नदियों के किनारे कल्पवास के उपक्रम का मौका और स्नान - दान का पुनीत अवसर.

खिचड़ी का यह विशेष दिवस उत्तराखंड में 'उत्तरैणिक कौथिक" का दिन है. आटे व गुड़ से बनाए जाने वाले "घुघूती" कौवों को बुलाकर खिलाने का दिन.

काले कौवा काले

घु घू ती माला खाले.

कहा जाता है कुमाऊं के चंद वंशीय नि:संतान राजा कल्याणचंद को भगवान बागनाथ की कृपा से पुत्र की प्राप्ति हुई तो बालक का नाम घुघूती रक्खा गया, जिसकी कौवे से अतिशय प्रीति हो गई. एक दूसरी जनश्रुति में कहा गया है कि भाई जब धुर पहाड़ में ब्याही अपनी बहन से मिलने आता है तो वह निद्रावस्था में होती है, भाई उसे जगाए बिना घर से लाए हुए पकवान की सामग्री छोड़ कर लौट जाता है. बाद में बहन रुआंसी होकर अपना विलाप एक कौवे को बताती है.

कुमाऊं के अंचल में मकर संक्रांति का सर्वाधिक ख्यात और श्रद्धा पर अवलंबित, लोकप्रिय मेला हल्द्वानी - नैनीताल मार्ग पर रानीबाग में जियारानी का मेला नाम से लगता है. जियारानी हैं खैरागढ़ के कत्यूर सम्राट प्रीतम देव (1380-1400) की महारानी, ब्रह्मदेव (1400-424) की मां और लोककथा नाय मालूशाही (1424-1440) की दादी. ऐतिहासिक वृतान्तों के अनुसार उत्तरी भारत के गंगा जमुना रामगंगा के दोआब में जब तुर्कों ने डेरा जमा लिया तो ये रूहेले राज्य विस्तार के इरादे से पहाड़ की गौला नदी के किनारे किनारे बढ़ने लगे. इनका रास्ता रानी जिया ने बड़ी वीरता से रोका, वे पराजित भी हुए और भाग खड़े हुए.

एक अलसुबह स्नानरत जिया रानी पर रुहेलों ने प्रतिघात कर दिया और रानी शहीद हो गई. उसके बाद दुश्मनों ने पत्थर पर फैला रानी जिया का हीरे मोती जड़ा लहंगा उठा ले जाना चाहा तो बताते हैं, वह भी पत्थर का बन गया. आज भी लोग उस शिला को देखने रानीबाग आते हैं. कत्यूर पहाड़ी और आसपास के गांव के वंशानुगत जगरिये ढोल, दमुओं के साथ संक्रांति की पूर्व रात भर जागर एवं बैर गाते हैं और पार्श्व में लोगों का समवेत स्वर गूंजता सुनाई देता है- जै जिया, जय हो जिया.

फिर अगली सुबह, फिजाओं में लोकगायक नरेंद्र नेगी का गाना- "घुघुति घुरोण लागी म्यार मैतेकी" या गोपाल बाबू गोस्वामी का गीत- "आम की डाई मा घुघुति नी बासा" और कौतिक शाम तक बदस्तूर जारी.

उसके बाद, कहना न होगा कि कालिदास ने "ऋतुसंहार" में पकी हुई धान की बालियों का जो मोहक व रूपहला दृश्य प्रणीत किया है, मकर संक्रांति से वसंत तक खेतों में गेहूं की सुकोमल मगर हरेपन से लबालब पौंध भी उससे कमतर नहीं. इसीलिए संक्रांति की अभिधा चाहे यात्रा हो पर लक्षणा संबंधों में ऊष्मा लाने का आव्हान है.

चाय के जादुई स्वाद का ब्रह्मांड से कनेक्शन

जसबीर सिंह सिक्का

मकाईबाड़ी चाय बागान दार्जिलिंग का सबसे पुराना टी एस्टेट है. इसकी स्थापना 1859 में हुई थी. मकाईबाड़ी में धरती और ब्रह्मांड के दूसरे ग्रहों की चाल के हिसाब से चाय तैयार की जाती है.

सिल्वर टिप्स इम्पीरियल चाय को तोड़ने की प्रक्रिया देखने के लिए सैलानी दूर देशों से दार्जिलिंग आते हैं.

चटख़ चांदनी रातों में बागान मज़दूरों की हंसती-गाती टोलियां इस चाय की कलियां चुनती हैं. मानो वो चाय नहीं, ब्रह्मांड के रहस्य को जुटा रही हों. स्थानीय लोग कहते हैं इस चाय में धरती का हर जादू, ब्रह्मांड का हर राज़ और मिट्टी की सारी ताक़त समाई हुई है.

रात आठ बजे के बाद जब पूर्णमासी का चांद सबसे चमकीला होता है, तब कुशल मज़दूर बड़ी तेज़ी से चाय की केवल दो पत्तियां और कली तोड़ते हैं. माना जाता है कि अगर इस चाय की पत्तियों पर सूरज की रोशनी पड़ती है, तो उसका स्वाद ही नहीं, रंग-रूप भी बदल जाता है.

इसीलिए मज़दूरों की कोशिश होती है कि आधी रात से पहले ज़्यादा से ज़्यादा पत्तियां और चाय की कलियां जमा कर ली जाएं.

इसके बाद इस चाय की प्रॉसेसिंग की जाती है. ये काम भी सुबह होने से पहले पूरा करना होता है.

50 किलो सिल्वर टिप्स इम्पीरियल चाय तैयार करने के लिए 200 किलो ताज़ा पत्तियों की ज़रूरत होती है. मज़दूर इससे ज़्यादा पत्तियां नहीं तोड़ते.

दुनिया की सबसे महंगी इस चाय यानी सिल्वर टिप्स इम्पीरियल की कलियों को साल के कुछ ख़ास दिनों में ही, कुल चार या पांच बार तोड़ा जाता है. 2014 में सिल्वर टिप्स इम्पीरियल एक लाख 36 हज़ार रुपए किलो से भी ज़्यादा दाम पर बिकी थी.

सिल्वर टिप्स इम्पीरियल चाय को पूर्णमासी की रात में ही तोड़ा जाता है. समुद्र में इस वक़्त ज्वार आता है. जो बहुत ताक़तवर होता है. पूरे ब्रह्मांड की शक्ति धरती पर असर डालती है. ऐसे मौक़े पर जो चीज़ भी तैयार की जाती है, वो बहुत ताक़तवर होती है.

सिल्वर टिप्स इम्पीरियल की ख़ुशबू तो जानदार है ही, इसकी और भी कई ख़ूबियां हैं. ये एंटी-एजिंग है. डिटॉक्स करती है और पीने वाले को आराम का एहसास कराती है.

हिंदी की उदारता ही उसकी ताकत है

बाबूलाल दाहिया

मुझे भोपाल के एक होटल से रानी कमला पति स्टेशन आना था. आटो वाले ने पूछा तो रानी कमलापति नाम ही भूल गया अस्तु जल्दी में कह दिया हबीब गंज. वह मुस्लिम ड्राइवर सुधारते हुए बोला, "अच्छा रानी कमलापति स्टेशन?"
मैंने कहा "हां."

दरअसल उसे रोज सवारी लाते ले जाते रानी कमलापति रट गया होगा पर मेरी जुवान पर वही पुराना ही चढ़ा था. इसी तरह मैं प्रयाग राज को भी अक्सर इलाहाबाद कहने की भूल कर बैठता हूं.
कुछ वर्षों से शहरों के नाम बदलने की मुहिम तो चली ही थी पर अब बोल चाल में आए फारसी और अंग्रेजी के नामों पर भी कुछ लोग अपनी संकीर्ण मानसिकता थोपने लगे हैं. पर उनसे कौन कहे कि जब हिंदू, हिंदुस्तान ही विदेशियों का दिया हुआ नाम है तो हिंदुओं की भाषा हिंदी में शुद्धता ढूंढ़ना भी 'फूस में फांस ढूढ़ना' जैसे मुहावरे को चरितार्थ करना ही है, क्योंकि उसकी बुनियाद में ही सम्मिश्रण है.

हमने गांधी जी के भाषण पढ़े हैं. नेहरू जी के भाषण नज़दीक से सुने हैं, और उनकी पुस्तक भारत एक खोज भी पढ़ी है. पर उनके भाषण और लेखन में हिंदी नहीं हिंदुस्तानी रहा करती थी. उन भाषणों में हिंदी-उर्दू का अंतर न के बराबर था. लगता है आजादी के पश्चात ही हिंदी अधिक संस्कृत निष्ठ होकर अपना अलग रूप गढ़ती चली गई और उसकी बहन उर्दू भी अधिक फारसी निष्ठ होती गई.

पर यकीन मानिए हिंदी की अपनी ताकत उसकी उदारता ही रही है. जो शब्द सहज, सरल, बोधगम्म बोल-चाल में स्वीकार्य हैं चाहे जिस भाषा के हों हिंदी ने आत्मसात किया अस्तु भाषा लोचदार या मुहावरेदार बनी. उसने यह परहेज नहीं किया कि वह शब्द फारसी के हैं या अंग्रेजी के. भाषा और लिपि दोनों यूं भी मनुष्य का नैसर्गिक नहीं अर्जित ज्ञान है. मैं गांव में रहता हूं और यह अनुभव किया है कि लोग सरल सहज ग्राह्य शब्दों को तो अपना लेते हैं पर कठिन को छोड़ देते हैं. कुछ अटपटे शब्दों के बजाय उसके गुण धर्मों के अनुसार नए नाम भी रख देते है. मोटर साइकिल को फटफटिया या आइपोमियां का नाम बेसरम रखना उनके उसी नामकरण के परिचायक हैं.

वे रेल के इंतजार में बैठे हों तो यह कभी भी नहीं कहते कि "आज लौह पथगामनी विलंब से आएगी," बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त मानते हैं कि "ट्रेन लेट है." जब कि इस वाक्य में 66% इंग्लिश और सिर्फ "है" भर हिंदी का क्रिया पद है. पर एक ही अक्षर 66% इंग्लिश को हिंदी बना देता है. हमें चाहिए कि अपनी हिंदी को इसी प्रकार सामर्थवान बनाते रहें. शुरू-शुरू में तो भाषा के रूप में मनुष्य के मात्र आंखों के इशारे या हाथ के संकेत ही रहे होंगे. ठीक उसी प्रकार जैसे मूक बधिर लोग सब कुछ समझ लेते हैं. यदि कुछ शब्द मुंह से फूटते भी रहे होंगे तो उसी तरह जैसे भूखा बछड़ा "ओ मां" की लंबी आवाज मुंह से निकालता है और उत्तर में गाय भी हुंकार भरती है. पर तब ग्वाला या किसान भी उनकी भाषा समझ जाता है कि "बछड़ा भूखा है और गाय उसे दूध पिलाना चाहती है."

भाषा मात्र उर्दू, हिंदी, संस्कृत या अंग्रेजी भर नहीं है. प्राचीन समय में देश में सैकड़ों ऐसी बोलियां थीं जो एक-दूसरे से अलग-अलग थीं और हर एक समुदाय की अपने -अपने सीमित कार्य क्षेत्र की जरूरत की भाषा ही हुआ करती थीं. तब संचार के साधन आज जैसे नहीं थे और विवाह संबंध आदि 50-60 किलो मीटर के दायरे में ही होते थे अस्तु उस सीमित क्षेत्र की लोक व्यौहार की एक अलग तरह की भाषा ही बन जाती थी. इसलिए भाषा कोई भी हो, महत्वपूर्ण उसके भाव होते हैं.

2017 की बात है जब हमारा 5 सदस्यीय दल 40 जिलों के परंपरागत 'बीज बचाओ' यात्रा अभियान में था और बैतूल जिले के एक गांव में रुका था. हमें वहां ठहरा देख वहां के कोरकू समुदाय ने रात्रि में हमारे सम्मान में एक लोक नृत्य का कार्यक्रम रखा. कोरकू आदिवासियों की अपनी एक अलग बोली है जिसे वहां बसने वाले अन्य समुदाय यादव, रहांगडाले, ठाकरे, विसेंन आदि भी नहीं समझते. जब उनके द्वारा गाए गए गीत का अर्थ हमने एक कोरकू टीचर से पूछा तो गीत के भाव को समझ हम खुद ही आश्चर्य चकित रह गए. वह गीत कोरकू युवकों को संबोधित था जिसमें कहा गया था कि- " देखो रे ! आज हमारे बीच यह मेहमान आए हैं, अस्तु उनकी सेवा और सुविधा में कोई कमी मत रखना?" तो यह थी अपढ़ कोरकू लोगों की हमारे प्रति मेहमानवाजी की वैचारिक अभिव्यक्ति.

हमारी बोली बघेली है और पड़ोसी क्षेत्र के जिलों की बुंदेली परंतु न तो बुंदेली को बुंदेला राजपूत बनारस या मिर्जापुर से बुंदेलखंड में लाए थे ना ही,बघेल राजा गुजरात से बघेली को लाए होंगे क्योंकि उनके पहले भी बुंदेलखंड में चंदेल, खंगार, लोधी, भर एवं गोड़ राजवंश शासन करते थे और बघेलखंड में कोल, वेनवंशी, गोंड़, बालंद आदि राजा हुए थे. इसलिए सिद्ध है कि यह वर्तमान बघेली-बुंदेली पहले भी किसी न किसी लोक व्यौहार की भाषा के रूप में विकसित रही होंगीं.

पिछले वर्ष जब मैं कोल जनजाति पर शोध, सर्वेक्षण कर रहा था तो कोरकू की तरह ही कोल समुदाय की भी एक अलग "हो" नामक भाषा के कुछ संकेत मिले थे. "हो" का अर्थ उस कोलारियन भाषा में मनुष्य होता है. हो सकता है प्राचीन बघेली कोलों की "हो" भाषा से ही विकसित हुई हो जो अन्य समुदायों के यहां बस जाने के कारण बदल गई हो? पर उसके अवशेष आज भी हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू व संस्कृत की परिधि से बाहर राउत, रउताइन, गउटिया, गउटिन आदि सम्मान जनक पद एवं उनका जोहार नामक अभिवादन लोक व्यौहार में मौजूद हैं.

शहर में रहने वाले किसी व्यक्ति से यदि पेड़ों के नाम पूछे जाएं तो वह 20-25 नाम बताकर चुप हो जायगा. परंतु यहां के कोल, गोंड, भुमिया एवं बैगा आदिवासी एक सांस में ही सैकड़ों नाम बता देंगे. इसलिए सिद्ध है कि पेड़- पौधों, वनस्पतियों ,नदियों, पहाड़ों के रखे गए नाम यहां के प्राचीन निवासियों के ही रहे होंगे. बाद में पढ़े लिखे लोगों ने प्रलेखीकरण करके यानि लिपिबद्ध करके उन्हें अपना बना लिया होगा. जैसे हमारे पास संरक्षित 200 प्रकार की परंपरागत धानों के नाम तो किसानों के रखे हुए हैं, पर आज वह हमारे पास लिपिबद्ध हैं तो लोग हमारी मानने लगे हैं.

इसलिए वक्त का तकाजा है कि भाषा विचार की अभिव्यक्ति का माध्यम ही रहे, पूजा की वस्तु नहीं जो देवालय में सजाकर रख दी जाए. क्योंकि जैसे- जैसे संचार का दायरा बढ़ता है भाषा में भी एकरूपता आती जाती है.

साहित्य और स्त्री सशक्तिकरण

तूलिका मिश्र

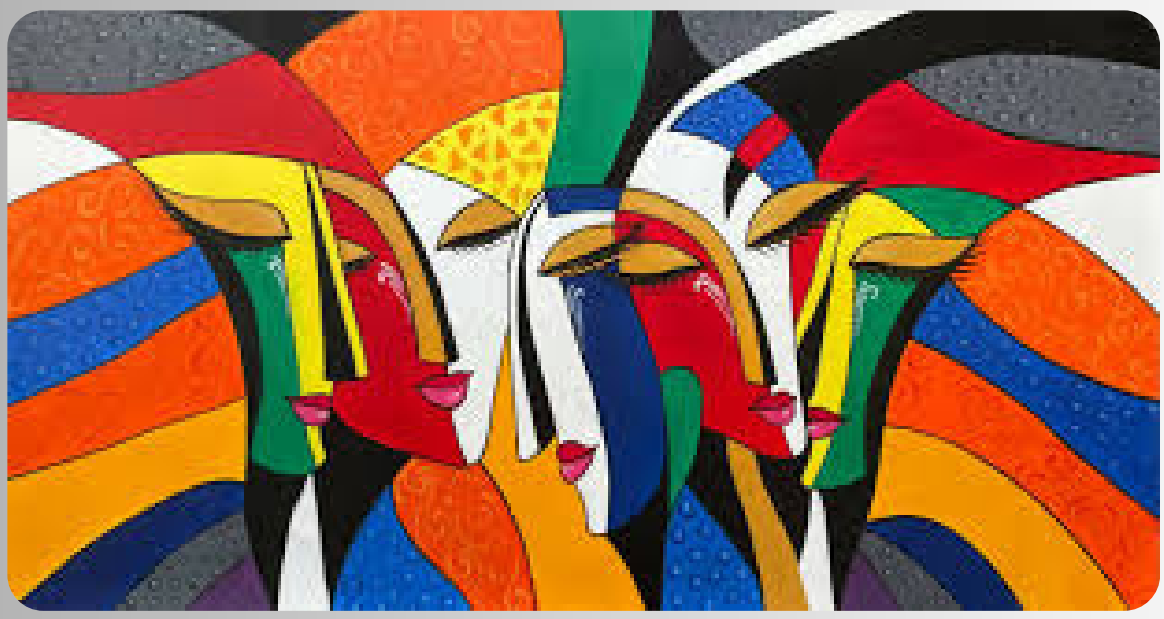

फ़रवरी के प्रेम से सराबोर मलयांचल बयारों के बाद आता है मार्च का महीना– महिलाओं का महीना, महिला सशक्तिकरण का सांकेतिक महीना. आज जब प्रेम और विवाह में पुरुष और स्त्रियों के ताल-मेल का इतना अभाव है, जब प्रेम और विवाह की परिभाषा सहिष्णुता, सहजता से परे है, जहां भौतिकता नैसर्गिकता को धकेल सर्वोच्च स्थान पर बैठी है, स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने मौलिक गुणों को अस्वीकार करते दिख रहे , जहां पुरुषों का पुरुषोचित सौंदर्य तथा स्त्रियों के स्त्रियोचित सौंदर्य क्षीण होते जा रहे हैं, वहां संसर्ग, रिश्ते, प्रेम और विवाह की परिभाषा भी स्वाभाविक है बदलती जा रही है. क्यों स्त्री का स्थान आज भारत और विश्व में बदल गया, क्यों आज नारी को जो शुरू से सर्वोपरि स्थान मिला था उसके लिए उन्हें गुहार लगानी पड़ रही है? आज के आधुनिक युग में भी नारे लगाती औरतों की स्वतंत्रता की मांग, समाज में एक विशेष स्थान की मांग, तलाक और टूटते रिश्तों की दिनानुदिन बढ़ती संख्या, एक बार फिर मुझे साहित्य की तरफ खींचती है क्योंकि आधुनिकता ने तो रिश्तों की मर्यादा ही समाप्त कर दी.

जब विज्ञान हार जाता है, साहित्य उसे संभालता है. बदलते हुए परिवेश में विचलित होना स्वाभाविक है ऐसे में पीछे मुड़कर अपने धर्म, अपने साहित्य, अपने लोक गीतों में ही संभावनाएं दिखाई देने लगती हैं. परिवर्तन भले ही परंपरा को समेट ले परन्तु परंपरा प्रत्येक युग में जीवित रहती है, रहनी भी चाहिए क्योंकि ये ही हमें जीने का एक आधार प्रदान करती है.

प्रेम शब्द सुनते ही साहित्य की अनेक रचनाएं, चरित्र मन में कौंधने लगती हैं– आखिर प्रेम में भी मापदंड तो तय करते हैं ये चरित्र. कभी दिनकर की 'उर्वशी' जो प्रेम और सौंदर्य का काव्य है और प्रेम और सौंदर्य की मूल धारा में हमारे जीवन में प्रेम को एक प्रकार से परिभाषित करती है, तो कभी उपमा–अलंकारों से लैस कालिदास का प्रेम, और सौंदर्य और अभिजात्य से परिपूर्ण "शकुंतला". राधा–कृष्ण के पारलौकिक प्रेम की तो बात ही क्या. अधिकांश प्रेम पर आधारित काव्यों में स्त्री की एक अहम् भूमिका रही है, और जब भी हम इन रचनाओं को पढ़ते हैं, इन चरित्रों को समीप से जानने की कोशिश करते हैं, हम देखते हैं कि यहां नैसर्गिक सौंदर्य की ही बात हो रही है- कृत्रिमता से कोसों दूर.

इनमें एक और ख़ास बात कि उस युग में जब औरतों की स्वतंत्रता पर कोई बहस नहीं थी, उनके अस्तित्व पर कोई ख़तरा नहीं था, स्त्री एक अत्यंत सुदृढ़ चरित्र बनकर ही सामने आई, वो बस एक नायिका नहीं, अपितु प्रेम के दो किरदारों में एक अधिक सशक्त चरित्र बन कर अनेक आयामों को लिए उभर कर आई. इतनी सशक्त कि वो मात्र सौंदर्य की मूरत नहीं, तेरहों कला से परिपूर्ण, विद्या की धनी ,स्वाभिमान से ओतप्रोत एक अत्यंत गरिमामयी चरित्र बनकर सामने आती हैं.

प्रेम में लिप्त होकर भी इनके किरदारों में कभी स्वाभिमान की कमी या अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति उदासीनता कतई नहीं दिखती, प्रेम में बिलकुल मर्दों के साथ बराबर की हिस्सेदार पाई गयीं, हमेशा अर्धांगिनी बनी ही पायी गयीं. ऐसे में नारी, जयशंकर प्रसाद जी की पंक्तियां-

“नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में.
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुंदर समतल में.”

के विपरीत एक हद तक ही “केवल श्रद्धा” और पीयूष का झरना हैं. वो इन सब के साथ वो सब हैं जो उनके प्रेमी हैं, वैसी ही हैं जैसा उनके साथ उनके जीवन के सहचर हैं. तभी ऐसी स्त्रियों को बराबर का मान मिला, सम्मान मिला, साहित्य में, इतिहास में और हम सब के मानस पटल पर भी.

इसलिए मुझे मार्च के महीने में यानि औरतों के लिए समर्पित महीने में, शिवरात्रि के महीने में एक बार फिर साहित्य और लोक गीतों के जरिये, शिव स्मरण होते हैं. शिव, जो प्रेम और सौंदर्य की सर्वोच्च प्रतिमूर्ति हैं, और शिव-पार्वती की जोड़ी प्रेम, विवाह और विश्वास का एक अतुलनात्मक उदाहरण है. शिव को याद करते ही स्मरण आता है महाकवि विद्यापति का, जिनकी रचनाएं छः शताब्दी गुज़रने के बावजूद आज भी प्रसांगिक हैं. उनकी रचनाओं ने लोक जीवन के एक प्रमुख पक्ष को आधार बनाकर अनेकों सामजिक संरचना तथा संचालन में इसके महत्व इत्यादि बिंदुओं पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने एवं उसका विश्लेषण करने का प्रयास किया है. विद्यापति के गीतों में वर्णित सामाजिक कुरीतियां एवं जनमानस के आम जीवन में फैली कुरीतियों ने हमें सोचने पर विवश कर दिया है.

मैथिली कविता पर मेरे विश्लेषणों की श्रृंखला में, दूसरे स्थान पर कवि कोकिल विद्यापति की 'नचारी' है. मैं फिर स्पष्ट करना चाहूंगी कि मैं इसे हिंदी में पाठकों तक व्यापक पहुंच के लिए लिख रही हूं ताकि मैथिली के महान कवियों की रचनाएं और उनका विश्लेषण भारत के हर भाषाई वर्ग तक पहुंचे. 'महेशवानी' के अंतर्गत विद्यापति के कई लोक गीत हैं जो शिव और पार्वती की कथाओं को आम लोगों में प्रचलित करते हैं. सुनने-पढ़ने वाले इन्हें अपने मनोभाव और मानसिक आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण करते हैं और उनका विश्लेषण करते हैं. ऐसा ही एक गीत जो मुझे व्यक्तिगत रूप से हमेशा से झकझोरता रहा है, वह है-

“आजु नाथ एक व्रत महा सुख लागल हे।
तोहे सिव धरु नट भेस कि डमरू बजाबह हे.
तोहे गौरी कहैछह नाचय हमें कोना नाचब हे,
चारि सोच मोहि होए कोन बिधि बाँचब हे.
अमिअ चुमिअ भूमि खसत बघम्बर जागत हे,
होएत बघम्बर बाघ बसहा धरि खायत हे.
सिरसँ ससरत साँप पुहुमि लोटायत हे,
कातिक पोसल मजूर सेहो धरि खायत हे.
जटासँ छिलकत गंगा भूमि भरि पाटत हे,
होएत सहस मुखी धार समेटलो नही जाएत हे.
मुंडमाल टुटि खसत, मसानी जागत हे,
तोहें गौरी जएबह पड़ाए नाच के देखत हे.
भनहि विद्यापति गाओल गाबि सुनाओल हे,
राखल गौरी केर मान चारु बचाओल हे”. (कवि विद्यापति)

कवि की इन पंक्तियों में पार्वती शिव से कहती हैं कि आज एक महान व्रत का मुहूर्त है और उन्हें अथाह सुख की अनुभूति हो रही है, आप नटराज का वेष धारण कर डमरू बजाएं और मुझे नृत्य दिखाएं. गौरी के इस आग्रह को सुन शिव उनसे कहते हैं कि वो विवश हैं क्योंकि नृत्य के फलस्वरूप संभावित चार खतरों से वो ख़ास कर चिंतित हैं जिससे सृष्टि का बचना मुश्किल हो जायेगा. प्रथम कर्म में नृत्य से उनके सर पर चंद्रमा से जो अमृत बूंदें टपकेंगी, उससे उनका बाघम्बर जीवित हो, बाघ बन जायेगा और उनके बैल नंदी को खा जायेगा. दुसरे, नृत्य के क्रम में उनकी जटाओं में लिपटे सर्प भूमि पर गिर जायेंगे और कार्तिकेय के पाले हुए मयूर उन्हें मार डालेंगे. तीसरा, नाचते वक़्त उनकी जटा से छलक कर गंगा भी नीचे गिर पड़ेंगी और उनकी सहस्र धाराएं बह निकलेंगी जिन्हें संभालना बहुत मुश्किल हो जायेगा. चौथे, नाचने से उनके गले में पड़ा मुंडों का माला भी टूट कर बिखर जायेगा और सारे प्रेत जीवित हो उठेंगे जिससे भयभीत हो पार्वती ही डर कर भाग जाएंगी तो फिर उनका नृत्य भला देखेगा कौन? विद्यापति अंत में कहते हैं कि नटराज फिर भी अपनी पत्नी का मान रखते हुए नृत्य करते हैं और सारे संभावित खतरों को संभाल भी लेते हैं.

विद्यापति के शिव इस गीत में देवों के देव नहीं बल्कि मनुष्य रूप में एक साधारण पति हैं जो अपनी पत्नी के अनुरोध पर विवशताओं को संभालते हैं, उसकी मान की रक्षा करते हुए नट रूप धारण कर नृत्य दिखाते हैं और पत्नी की इच्छा का सम्मान करते हैं.

इस लोकगीत में शिव एक आम पति हैं और गौरी एक पत्नी और इस रूप में अगर हम इस गीत का विश्लेषण करते हैं तो जो सामने आता है वो है स्त्रियों का पति के समकक्ष स्थान, पति के ह्रदय में उनके लिए सम्मान, पत्नी की इच्छा पूर्ति पति के लिए कर्त्तव्य बन जाना और सर्वप्रमुख ये कि यदि पति और पत्नी में तारतम्य रहे तो संसार की सारी विवशताएं धूमिल पड़ सकती हैं, वीभत्सता एक अभूतपूर्व रम्यता में बदल सकती है.

विद्यापति रचित इस कविता में शिव और पार्वती का संवाद केवल एक पारलौकिक कथा नहीं है, बल्कि इसमें दांपत्य जीवन, स्त्री-पुरुष संबंधों और सृष्टि के संतुलन का गहरा दार्शनिक संदेश निहित है. यह गीत शिव के नटराज रूप की लीला का वर्णन करता है, परंतु इसे केवल पौराणिक दृष्टि से देखने पर इसकी गहराई अधूरी रह जाती है. वास्तव में, यह एक ऐसा काव्य है, जिसमें समाज, मनोविज्ञान और दर्शन का समावेश है.

नृत्य और सृष्टि का संतुलन

शिव का नृत्य केवल एक कलात्मक क्रिया नहीं है, यह संपूर्ण सृष्टि की ऊर्जा और गति का प्रतीक है. शिव के हर नृत्य में सृजन और संहार दोनों निहित हैं. परंतु यहां, शिव स्वयं इस नृत्य को रोकने का प्रयास करते हैं, क्योंकि उनकी गति से संपूर्ण विश्व प्रभावित हो सकता है. यह इंगित करता है कि शक्ति का संतुलन बनाए रखना आवश्यक है, अन्यथा अस्तित्व संकट में पड़ सकता है.

पति-पत्नी का संवाद और परस्पर सम्मान

पार्वती का आग्रह और शिव की विवशता केवल एक पौराणिक कथा भर नहीं है; यह एक दांपत्य जीवन का यथार्थ चित्रण भी है. पति-पत्नी के बीच प्रेम का तात्पर्य केवल भावनात्मक संतोष नहीं, बल्कि जिम्मेदारियों की साझेदारी भी है. पार्वती शिव से आग्रह करती हैं, परंतु शिव तर्क के माध्यम से उन्हें समझाते हैं कि उनकी एक क्रिया से पूरे ब्रह्मांड में हलचल मच सकती है. यह पुरुष की शक्ति को नहीं, बल्कि उसके विवेक और उत्तरदायित्व को दर्शाता है. शिव अंततः पार्वती के आग्रह को स्वीकारते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि प्रेम और सम्मान के समन्वय से जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान संभव है.
प्राकृतिक तत्वों की भूमिका

शिव के नृत्य से उत्पन्न होने वाले संभावित संकट केवल प्रतीकात्मक नहीं हैं, बल्कि यह दर्शाते हैं कि ब्रह्मांड की हर छोटी-बड़ी क्रिया का प्रभाव व्यापक होता है. उदाहरण स्वरूप:

• अमृत बूंदों से बाघंबर जीवित होकर नंदी को खा सकता है– यह शक्ति के असंतुलन का प्रतीक है, जहां एक तत्व दूसरे को नष्ट कर सकता है.

• गंगा का प्रवाह अनियंत्रित हो सकता है– यह दर्शाता है कि जब कोई शक्ति अपने नियंत्रण से बाहर हो जाती है, तो वह विनाशकारी हो सकती है.

• सर्पों का गिरना और मयूरों द्वारा मारा जाना– यह विरोधाभासी तत्वों के बीच संघर्ष को इंगित करता है.

• मुंडमाल के गिरने से प्रेतों का जाग उठना– यह दर्शाता है कि यदि संतुलन बिगड़ता है, तो मृत (अव्यवस्थित) चीजें भी पुनः क्रियाशील हो सकती हैं.

इन सभी तत्वों के माध्यम से विद्यापति यह दिखाते हैं कि शिव केवल एक सर्वशक्तिमान देवता नहीं हैं, बल्कि वे सृष्टि के संतुलन को बनाए रखने वाले शक्ति-स्रोत भी हैं.

नारी शक्ति और दांपत्य जीवन में स्त्री की भूमिका

विद्यापति की इस कविता में पार्वती केवल शिव की सहधर्मिणी नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र इच्छाशक्ति वाली स्त्री हैं. वे केवल आदेश का पालन करने वाली देवी नहीं, बल्कि वे शिव से एक अनुरोध करती हैं और अपनी इच्छा को प्रकट करती हैं. यह इस बात को दर्शाता है कि स्त्रियों की इच्छाओं का भी महत्व है और पति को उन्हें स्वीकारना चाहिए. अंत में, शिव अपनी नृत्य-लीला को संभालते हुए पार्वती की इच्छा का सम्मान करते हैं. यह एक आदर्श दांपत्य का प्रतीक है, जहां पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे की भावनाओं को समझते हैं.
आधुनिक संदर्भ में संदेश
आज के संदर्भ में इस कविता की प्रासंगिकता कई स्तरों पर दिखती है.

• स्त्री सशक्तिकरण– यह कविता दर्शाती है कि स्त्री केवल पुरुष की परछाईं नहीं, बल्कि स्वयं एक सशक्त और स्वतंत्र अस्तित्व है. पार्वती का आग्रह यह संकेत देता

खरीदारी की लत एक समस्या

प्रीता व्यास

एक वक़्त था जब लोग बिना ज़रुरत बाज़ार नहीं जाते थे. मुझे याद है मेरी दादीमां महीने में केवल एक बार सौदा लेने बाजार जाती थीं और वो भी ज़रूरी सामानों की लिस्ट बना कर, सब्ज़ी- भाजी घर में साप्ताहिक रूप से आती थी और कपडे-लत्ते सिर्फ तीज-त्यौहार पर. हम वैसे नहीं हैं. एक चीज़ की ज़रुरत होती है तो झट गाड़ी उठा कर भागते हैं और चार और चीज़ों के साथ लौटते हैं. ज़्यादातर लोगों का यही हाल है.

वक़्त के साथ बाज़ार का स्वरुप बदला है, पूरी अवधारणा ही नई हो गई है. उपभोक्ता का मिजाज भी बदला है. कुछ नहीं तो लोग 'विंडो शॉपिंग' के लिए चले जाते हैं. कुछ खाया-पिया, कुछ छोटा- मोटा गैरज़रूरी खरीद भी लिया. कुछ को सेल ललचाती है तो कुछ को ऑनलाइन शॉपिंग में मज़ा आता है. घंटों सर्फ़ करते रहते हैं सामानों को और रोज़ ही कुछ न कुछ ऑर्डर कर देते हैं. कुछ दुकानें बड़ी खरीदी पर इंट्रेस्ट फ्री शॉपिंग का प्रलोभन देतीं हैं. कहीं एक ख़रीद पर एक मुफ़्त का वादा है तो कहीं लकी ड्रॉ में सोने-चांदी के सिक्के से लेकर इलेक्ट्रॉनिक सामान देने की बात.

ऐसा अक्सर होता है कि आपको कुछ नहीं ख़रीदना होता लेकिन आपके मित्र कहते हैं-" अरे चलो ना, क्लीयरेंस सेल लगी है, कुछ आइटम पर तो एक के साथ एक फ्री भी है.' और आप चल देते हैं. जाते इस पक्के इरादे के साथ हैं कि मुझे नहीं खरीदना है, मैं बस साथ जा रही/ रहा हूं लेकिन जब लौटते हैं तो आपके हाथ में भी थैले होते हैं.

हम में से अक्सर लोग ऐसा ही करते हैं. जब कहीं किसी दुकान या ब्रैंड पर सेल का बोर्ड देखते हैं तो ख़ुद को खरीदारी करने से रोक ही नहीं पाते. ऐसा लगता है जैसे हम दुकानदार को बेवक़ूफ़ बनाकर कम दाम में ज़्यादा सामान ख़रीद कर ला रहे हैं. मन ही मन एक अलग तरह की जीत का एहसास होता है. "बड़ी अच्छी डील मिल गई", कुछ ऐसा कहते हैं बड़ी शान से.

न्यूरोमार्किटिंग के कुछ जानकारों का कहना है कि जब भी हम कहीं सेल का बोर्ड लगा देखते हैं तो हमारे ज़हन में एक ख़ास तरह का ज़ज़्बा पैदा हो जाता है. हमारे दिमाग़ में कुछ ख़ास तरह की तरंगें पैदा होती हैं, जो दिमाग़ को ख़रीदारी करने का आदेश देने लगती हैं. ऐसे में हम ये फ़ैसला सोच समझ कर नहीं करते कि हमें क्या ख़रीदना है और क्या नहीं. हमें उस चीज़ की ज़रूरत है भी या नहीं. बहुत मर्तबा हम यही सोच कर ख़रीदारी कर लेते हैं कि चलो अभी ख़रीद लेते हैं, जब वक़्त आएगा तब इस्तमाल कर लेंगे. या किसी को तोहफ़े में ही दे देंगे.

हालांकि कुछ लोग आज भी हैं जो इस अति-उत्पादन के युग में प्रलोभनों से बचते हुए कम उपभोग करना चाहते हैं और अपने घर को साफ-सुथरा रखना चाहते हैं लेकिन कुछ अन्य लोगों को लगता है कि उनकी खरीदारी एक समस्या बनती जा रही है. अक्सर ये लोग बेइरादा घर से निकलते हैं और गैरज़रूरी सामानों के थैले उठाये वापस लौटते हैं.

एक शोध समीक्षा से पता चलता है कि खरीदारी की लत दुनिया की लगभग 5 फीसदी आबादी को प्रभावित कर रही है. हालांकि इस लत की गंभीरता अलग-अलग लोगों में अलग-अलग स्तर की हो सकती है. विशेषज्ञों को लगता है कि यह समस्या बढ़ रही है और इसके उपचार के लिए बेहतर साधनों की जरूरत है.

मेरी एक 34 वर्षीय मित्र है जो स्ट्रेस काम करने के लिए शॉपिंग पर चली जाती है. दरअसल स्ट्रेस से परेशान लोग खरीदारी करते समय एक तरह के नशे में होते हैं, लगभग उसी तरह जैसा कुछ ड्रग्स लेने वाले लोगों का अनुभव होता है. स्ट्रेस्ड लोग जैसे ही ख़रीदारी का फ़ैसला करते हैं उनके अंदर पॉज़िटिव एनर्जी का संचार हो जाता है. न्यूयॉर्क की मनोवैज्ञानिक जॉर्डना जैकब्स कहती हैं, "जब हम खरीदारी करते हैं तो हमें डोपामाइन (मस्तिष्क के न्यूरॉन्स से निकलने वाला रसायन) का एक हिट मिलता है. इससे कुछ समय के लिए हमारा मूड अच्छा हो जाता है."

सिर्फ मेरी मित्र ही नहीं बहुत सारे लोग दुख, तकलीफ से ध्यान हटाने के लिए खरीदारी का सहारा लेते हैं. लेकिन इस तरह की गैर ज़रूरी खरीददारी से ना सिर्फ समय और पैसों की बर्बादी होती है बल्कि घर में भी कचरा इकट्ठा होता जाता है. मैं एक ऐसी महिला को जानती हूं जिसे खुद याद नहीं कि उसके पास कितने कपडे हैं, क्या-क्या है और वो लगातार फिर भी खरीदे जाती है. अब ऐसे लोग भी इस खरीददारी की बीमारी से निजात चाहते हैं.

न्यूरो मार्केटिंग रिसर्चर डैरेन ब्रिजर का कहना है कि शॉपिंग करना किसी ख़ज़ाने की तलाश करने जैसा ही होता है. जब आप किसी शो रूम में जाते हैं या किसी शॉपिंग साइट पर जाते हैं, तो, बहुत सी चीज़ें नज़र आती हैं. आप हरेक चीज़ को बड़े चाव से देखते हैं. आपकी नज़र उस ख़ास चीज़ को तलाशती रहती है जो देखते ही पहली नज़र में पसंद आ जाए, जो बिल्कुल अलग हो. उस चीज़ की मौजूदगी आपको अलग पहचान दिलाए, दस लोग आपसे पूछें कि बहुत अच्छा है, कहां से लिया. और जब वो मन चाही चीज़ आपको मिल जाती है तो मानो मन की मुराद पूरी हो जाती है. उस ख़ाज चीज़ की तलाश आपको खुशी का एहसास कराती रहती है. रिसर्चर इस एहसास को इमोशनल एंगेजमेंट कहते हैं. उनके मुताबिक़ जैसे ही आपको आपकी पसंद की चीज़ मिल जाती है आपके दिमाग़ में ख़ास तरह की तरंगे पैदा होती है जो दिमाग़ को ख़रीदारी करने का आदेश देती हैं.

जब आप शॉपिंग के लिए निकलते हैं तो सोचतें हैं चलो लगे हाथ अपने पसंद के ब्रांड वाली दूकान का भी एक चक्कर लगा ही लेते हैं. हो सकता है कोई काम की चीज़ मिल जाए. इसी तरह अगर किसी चीज़ के लिए आपकी दीवानगी है. और जब आप बाज़ार जाते हैं तो पहले से ही तय होता है कि फलां चीज़ तो लेनी है. मिसाल के लिए आपको जूतों का शौक़ है तो जब भी आप शॉपिंग के लिए जाते हैं तो कोशिश रहती है कि कोई अच्छा जूता आपको नज़र आए तो ज़रूर ख़रीद लेंगे.

हम में से अक्सर लोग ख़रीदारी करने के शौक़ीन नहीं होते. लेकिन जिस तरह बाज़ार में चीज़ें हमें लुभाती हैं वो हमें एक तरह से ख़रीदारी करने का आदी बना देती हैं. हफ़्तेवार बाज़ार लगने का चलन सारी दुनिया में है. और बहुत से लोग हर हफ़्ते इस जज़्बाती उठा-पटक के दौर से गुज़रते हैं कि उन्हें बाज़ार जाकर ख़रीदारी करनी है.

कुछ रिसर्चर तो ये भी मानते हैं कि बहुत बार हम अपने अंदर की कलह को शांत करने के लिए भी शॉपिंग करते हैं. कुछ परेशानियां ऐसी आ जाती हैं, जब कुछ समझ नहीं आता कि क्या किया जाए. ऐसे में बहुत से लोग ख़रीदारी करके अपने दिमाग़ को उस परेशानी से कुछ वक़्त के लिए दूर कर लते हैं.

इंटरनेट पर कुछ चीज़ों के रिव्यू पढ़ने के बाद भी ऐसा होता है कि हम उस चीज़ को ख़रीद लेते हैं. या बहुत बार हमारे दोस्त ही हमें ऐसा करने के लिए मजबूर कर देते हैं. दरअसल वो अपनी बातों से आपको भी ललचा देते हैं. डिजिटल दुकान की बड़ी हो रही सामानों की सूची और भी लुभाती है जब ये छूट और दूसरे आकर्षक प्रस्तावों के साथ पेश की जाती हैं. त्यौहारों का मौसम आने पर तो ये कोशिश और भी तेज़ हो जाती है. यहां ये भी अहम है कि इंटरनेट इस्तेमाल करने वालों की गिनती 50 करोड़ तक पहुंच गई है और अगले तीन सालों में ये संख्या 82 करोड़ से भी ज़्यादा हो जाएगी, यानी डिजिटल दुकान के लिए ज़्यादा से ज़्यादा संभावित ग्राहक.

बाज़ारवाद से उपजी इस बीमारी पर वित्तीय विषयों की लेखक मिशेल मैक्ग्रा ने साल 2017 में "दि नो स्पेंड ईयर" नामक किताब लिखी.अगर आप गूगल, यूट्यूब और रेडिट पर "नो-बाय ईयर" या "नो-स्पेंड चैलेंज" तलाशें तो ढेरों परिणाम मिलते हैं. यूट्यूब के ब्यूटी चैनलों पर "नो-बाय" आम शब्द है. वहां "नो-बाय मंथ" या "लिपस्टिक नो-बाय" जैसी चीजें खूब दिखती हैं. विशेषज्ञों का कहना है कि एक साल तक खरीदारी नहीं करने से मानसिक सेहत सुधरती है.
सैन फ्रांसिस्को की कंज्यूमर साइकोलॉजिस्ट किट यैरो कहती हैं, "पिछले करीब 20 साल से हम सस्ते माल से भर गए हैं. लोगों के पास सामान रखने के लिए जगह कम पड़ रही है." इस बात से वे हैरान नहीं होतीं कि लोग "नो-बाय" में भी खरीदारी कर रहे हैं.

सिडनी, ऑस्ट्रेलिया की 26 साल की लेखिका और ब्लॉगर एम्मा नॉरिस 2019 को नो-बाय ईयर बनाने का प्रयास कर रही हैं. वह बोरियत और अकेलेपन से बचने के लिए ढेर सारे कपड़े खरीदती थीं. खरीदारी बंद करने का फ़ैसला करने से पहले नॉरिस ने अपनी अलमारियों की छंटाई की. इससे उनको पता चला कि उनके पास कितने कपड़े हैं और अब और कपड़ों की जरूरत नहीं है. कुछ जरूरी चीजें खरीदने के अलावा अब शॉपिंग करने की उनकी कोई योजना नहीं है. नॉरिस को उम्मीद है कि इससे उनके पास ज़्यादा समय होगा और वह अपने पार्टनर के साथ बाली और दूसरे देश घूम सकेंगी.

अगर आप बेवजह की ख़रीदारी से बचना चाहते हैं तो सबसे पहला काम ये कीजिए कि बिना वजह बाजार जाने से बचिए. बिल्कुल ऐसे ही जैसे अगर आप शराब नहीं पीते हैं तो शराबखाने में जाने से बचते हैं. ऑनलाइन अगर ख़रीदारी करते हैं तो सेल वाले खाने में सबसे बाद में जाइए. ऑनलाइन आप उन्हीं चीज़ों को तलाशें जिनकी आपको ज़रूरत है. अगर किसी चीज़ की बहुत ज़रूरत है तो उसी चीज़ को अपनी लिस्ट में सबसे पहले रखें. अगर कोई चीज़ ख़रीदने की फ़ौरन चाहत हो भी रही है तो उसे फ़िलहाल टाल दें. दूसरे किसी मौक़े पर ख़रीदारी करें ताकि बेवजह पैसा ख़र्च करने से आप खुद को बचा सकें.
ख़रीदारी जब भी करें अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ करें. दिमाग़ बहुत बार आपको पैसे ख़र्च करने के लिए कहेगा. लेकिन आपको अपने दिल और दिमाग़ को यही समझाना है जब ज़रूरत होगी तब ख़रीद लेंगे.

गुरु बड़ा या वकील

राकेश मौर्य

एक वकील ने अपना कुआं एक शिक्षक को बेच दिया. दो दिन बाद वकील शिक्षक के पास आया और बोला "सर मैंने आपको कुआं बेचा है लेकिन इसमें भरा हुआ पानी नहीं बेचा अगर आप पानी का इस्तेमाल करना चाहते हैं तो आपको अतिरिक्त पैसे देने होंगे."

शिक्षक ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, "हां, मैं आपके पास आने ही वाला था, मैं आपसे कहने ही वाला था कि आप अपना पानी मेरे कुंए से निकाल लीजिए नहीं तो आपको कल से कुएं में पानी रखने का किराया देना पड़ेगा."
यह सुनकर वकील घबरा गया और बोला, "अरे मैं तो मज़ाक कर रहा था".

शिक्षक हंसा और बोला, "बेटा तुम जैसे कितने ही बच्चों को मैंने पढ़ाकर वकील बनाया है."
गुरु, गुरु ही होता है.

गुरु तो गुरु होते हैं

सोमदत्त द्विवेदी

काशी में एक महात्मा के पास एक श्रद्धालु इस भाव से पहुंचा कि इनसे संन्यास दीक्षा लेनी है. अनुरोध किया लेकिन महात्मा टालते रहते-अभी नहीं, अभी नहीं, आगामी वर्ष, आगामी सत्र.
बात टलती जा रही थी.

फिर एक दिन उस श्रद्धालु ने प्रयाग में महात्मा जी को पकड़ा, बोला, "अब और मत टालिए, अब यहीं संन्यास दे दीजिए, परिवार व्यापार छोड़ आया हूं."
गुरु तो गुरु होते हैं.

महात्मा जी ने कहा, "ठीक है लेकिन अपना मोबाइल अनलॉक करके हमारे पास रात भर के लिए छोड़ जाओ, सुबह संन्यास दीक्षा दूंगा."

बस, तब से उस संन्यास दीक्षा हेतु आतुर श्रद्धालु का अता-पता नहीं है.

चलो चलें गांव की ओर

हरी राम यादव

जनवरी के महीने में कड़ाके की ठंढ़ पड़ रही थी. लोग अपने घरों में पहने-ओढ़े दुबके हुए थे. घर से बाहर निकलने की हिम्मत कम ही लोग जुटा पा रहे थे. थोड़ी धूप निकलते ही लोग अपने घरों से बाहर निकलने लगे, कुछ लोग चाय पीने के लिए चौराहे की तरफ चले जा रहे थे. मुन्नू चाचा की चाय की दुकान पर चाय पीने वालों और समाचार पत्र पढने वालों की अच्छी खासी भीड़ जमा हो गई थी. गांव के चौराहे पर ठीक इसी समय शहर से आने वाली बस आकर रुकी. शहर से आने वाली बस में गांव के चौराहे पर उतरने वाली सवारियां कम ही होती थीं, कभी-कभार ही कोई उतरता था. शादी-ब्याह के मौसम में तो कुछ लोग शहर से गांव या गांव से शहर आते-जाते रहते हैं लेकिन जनवरी के महीने में कम ही लोग आते-जाते हैं. आज बस से इस चौराहे पर उतरने वालों में एक स्त्री और एक पुरुष थे. उनके हाव-भाव से ऐसा लग रहा था कि वह काफी दिनों के बाद इस गांव में आये हैं.

बस से उतरे हुए दंपत्ति ने चाय की दुकान पर इधर-उधर नजर दौड़ाई तभी उनकी निगाह चाय की दुकान पर चाय पी रहे एक बुजुर्ग व्यक्ति पर पड़ी. पुरुष ने लपककर उन बुजुर्ग व्यक्ति के पैर छू लिए. पुरुष के पीछे खड़ी स्त्री ने अपने सिर का पल्लू संभालते हुए बुजुर्ग व्यक्ति के पैर छुए और “प्रणाम बाबूजी” कहते हुए हाथ जोड़ लिए. बूढ़े व्यक्ति ने अपने दिमाग पर जोर डालते हुए कुछ याद करने की कोशिश की, फिर कुछ याद करते हुए बोले-

"अरे सनोज तुम!"
सनोज तपाक से बोल उठा- "हां बाबू मैं आपका छोटू सनोज."
बुजुर्ग ने प्रश्नवाचक मुद्रा में कहा- "बेटा कहो कैसे आना हुआ?"
सनोज थोड़ा झेंपते हुए बोला- "बाबूजी अब मैं हमेशा के लिए गांव आ गया हूं.

इसी बीच सनोज के गांव में आने की खबर एक बच्चे ने उनके बड़े भाई मनोज को जाकर बता दी. मनोज यह सुनते ही कि उसका भाई सनोज गांव की चाय की दुकान पर आया हुआ है, लंबे- लंबे क़दमों से चाय की दुकान की तरफ चल पड़ा. चाय की दुकान पर पहुंचते ही दोनों भाई मिलने के लिए एक दूसरे की ओर दौड़ पड़े. सनोज ने अपने बड़े भाई के झुककर पैर छुए और उनकी पत्नी ने आदरपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर मनोज को प्रणाम किया. फिर तीनों थैला उठाए हुए अपने घर की ओर चल पड़े.

घर पहुंचते ही सनोज की पत्नी अपनी जेठानी को देखते ही लिपट गई, देखकर ऐसा लग रहा था कि वह दोनों कई जन्मों के बाद मिली हों. मनोज के बच्चे अपने घर आए इन लोगों को प्रश्नवाचक दृष्टि से देख रहे थे. हां, देखें भी क्यों नहीं, इन बच्चों ने अपने चाचा-चाची के बारे में अपने माता-पिता से सुना था कि उनके चाचा-चाची शहर में रहते हैं, अब तक देखा नहीं था. इधर सनोज के आने की खबर गांव भर में फ़ैल गई. सनोज के आने की खबर सुनकर उनके बचपन के साथी हीरा, तुलसी और गंगा, सनोज से मिलने आ पहुंचे.

बहुत दिनों बाद चारों मित्र एक साथ मिले थे. इन सबका बचपन एक साथ बीता था. एक साथ ही पढ़ाई की थी. इंटर की परीक्षा पास करते ही सनोज को नौकरी मिल गई और वह शहर चला गया. कुछ दिनों बाद उसकी शादी हो गई और वह अपनी पत्नी को अपने साथ ले गया. बस यहीं से उसका गांव आना-जाना कम हो गया और बाद में बंद ही हो गया. लंबे अरसे के बाद मिलने पर चारों की खुशी का ठिकाना न रहा. चारों मिलकर अपने बचपन में खो गए. पुरानी बातें शुरू हो गईं. इसी बीच मनोज का बेटा राहुल एक प्लेट में गुड़ और गिलास में पानी ले कर आ गया. चारों ने मिलकर गुड़ खाया और पानी पिया.

बातों का सिलसिला चल निकला. तुलसी ने सनोज से पूछा- "सनोज यह बता कि इतने दिनों बाद गांव कैसे आना हुआ?"
सनोज ने कहा- "भाई तुलसी, मैं अपना घर-बार बच्चों को सौंपकर अब सदा-सदा के लिए शहर छोड़कर गांव आ गया हूं. मैं शहर की दिखावटी ज़िंदगी से तंग आ गया हूं. मैं अपने गांव और आप लोगों को भूलानहीं था. गांव में जो अपनापन है वह शहरों में कहां? शहर में पड़ोस वाला भी अपने पद और पैसे के गुमान में पड़ोस वाले से नहीं बोलता. वहां पड़ोसी की ईर्ष्या में दूसरा पड़ोसी जलता रहता है. शहरों में हर घर में चहारदीवारी बनी होती है. शहरी व्यक्ति सोचता है कि कहीं दूसरा व्यक्ति उसके बारे में जान न जाए. शहरों में लोग अपने तक ही सीमित रहना चाहते हैं, समय के आभाव का बहाना बनाते हैं लेकिन ऐसा है नहीं.

तुलसी ने बात को और आगे बढ़ाया. तुलसी ने कहा, "हां भईया यह बात तो सही है. शहर में हर घर में चहारदीवारी होती है लेकिन हमारे गांव में सबके घर के सामने खुला द्वार होता है, जिसकी मर्जी चाहे आए जाए. गांव की सड़क से आता हुआ हर आदमी दिखाई पड़ता है और देखते ही बोल उठता है कि भईया कैसे हो? गांव में किसी से कुछ छुपा नहीं होता है, सब सबके बारे में जानते हैं. गांव में लोगों के अंदर कोई दुराव-छुपाव नहीं होता, सब के दिल साफ़ होते हैं. कुछ दिन पहले मैंने अख़बार में पढ़ा था कि शहर में एक बुजुर्ग आदमी की मृत्यु हो गई तो कई दिन बाद दूध वाले से पता चला कि उस घर में जो आदमी रहता था, वह मर गया. शहर में तो पड़ोस वाला, पड़ोस वाले को नहीं जानता तभी तो हर घर के सामने नाम की तख्ती लगी होती है. पिछले कुछ साल से शहर से नेताओं ने आकर हमारे गांव का माहौल ख़राब करने की कोशिश की है. जाति धर्म के नाम पर लोगों के बीच वैमनष्यता की दीवार खड़ी करने का प्रयत्न किया है लेकिन वह कामयाब नहीं हो पाए हैं इसका मुख्य कारण है खुलापन, लोगों का आपस में बातचीत करना. अभी हमारे गांव में एका है, आपस में प्यार मोहब्बत है."

सनोज ने कहा- "वैसे शहर में ज्यादातर लोग गांव से ही जाकर बसे होते हैं, जिनको शहर में रोजी-रोटी मिल जाती है और थोड़े से पैसे हो जाते हैं वह लोग शहरों की चकाचौंध से प्रभावित होकर वहीं बस जाते हैं. आजकल शहरों में प्रदूषण की भरमार है, सड़कें गाड़ियों के बोझ से कराह रही हैं, धुंए से लोगों का दम घुट रहा है, शहरों का पानी पीने योग्य नहीं रह गया है, इन सबका कारण लोगों का दूसरों की देखा-देखी गांव से शहरों की ओर पलायन है."

हीरा ने सनोज की बात को काटते हुए कहा, "यह बात तो है लेकिन गांव में कोई रोजी-रोजगार तो है नहीं. खेती-बाड़ी में कितना होता है, यदि लागत और मेहनत निकाल दिया जाय तो मंहगाई के इस ज़माने में कुछ नहीं बचता. बस फसल काटते ही देखो, जब बेंचने लगो तो साहूकार बीस मीन मेख निकाल देता है. तब किसान औने-पौने दाम पर बेचने को विवश हो जाता है."
सनोज ने कहा, "सरकारी दुकान पर क्यों नहीं बेचते? वहां पर तो सरकारी रेट पर अनाज का दाम मिलता है."
हीरा ने कहा, "भईया आपने किताबों में पढ़ा होगा. वहां पर बैठा बाबू कभी रजिस्ट्रेशन के नाम पर, कभी बोरा नहीं है के नाम पर चक्कर लगवाता है. भईया अपनी खेती बाड़ी का काम करें या सरकारी दुकान का रोज चक्कर लगायें? इससे अच्छा है कि साहूकार को ही थोड़ा कम दाम में बेंच दें."

सनोज ने कहा कि खेती-बाड़ी में थोड़ा परेशानी तो है लेकिन कम से कम यह तो पता है कि जो खा-पी रहे हो वह असली है. शहर में बिकने वाली सब्जी तो पता नहीं कितने दिन की बासी होती है. बस पानी मार-मार कर ताज़ी बनी होती है. घर ले जाओ और एक दिन रख दो तो उसकी शकल देखने लायक हो जाती है. शहर के दूध का तो कोई भरोसा ही नहीं है कि वह दूध है या और कुछ. गांव में लोग सामने दुह कर देते हैं और वह भी 32- 35 रुपये लीटर. शहर में तो 68 रूपये लीटर बिकता है और कब दाम बढ़ जाए पता नहीं. शहर में गन्ने का रस 20 रुपए से 40 रुपए तक बिकता है लेकिन गांव में तो कितना भी पी लो." तुलसी ने सनोज की बात को काटते हुए कहा, "हां, यह बात तो है. गांव में हवा, पानी सब शुद्ध है. सब्जी तो रोज अपने खेत से तोड़कर लाओ."

सनोज ने तुलसी से कहा, "शहर के लोग अपनी पूरी जमीन में घर बना लेते हैं और घर का रैंप इतना बढ़ा लेते हैं कि दो तरफ से बने रैंप से आधी सड़क बंद हो जाती है, और इस पर तुर्रा यह कि उसी सड़क पर अपनी गाड़ी भी खड़ी कर देते हैं. रात में हालात यह हो जाते हैं कि किसी को कोई समस्या होने पर बड़ी गाड़ी न तो आ सकती है और न जा सकती है. घर के बाहर सड़क की जमीन पर पेड़ लगाकर उस पर भी अपना अधिकार जताते हैं. नाली का पानी बहने को लेकर आये दिन शहर में सिर फुटव्वल की नौबत बनी रहती है."

तुलसी ने कहा, "भैया, यह समस्या गांव में भी है, गांव में कुछ लोग साल दर साल खेत की मेंड़ को इसलिए काटते हैं कि उनका खेत बढ़ जाए और उपज बढ़ जाए लेकिन यह उनके मन का वहम है. सबके काम में आने वाली सड़क, चारागाह की जमीन, खलिहान की जमीन पर अतिक्रमण नहीं करना चाहिए, उसमें सबका हित है."

सनोज ने तुलसी से कहा, "तुलसी, अब तो मैं निश्चय करके आया हूं कि मैं गांव में ही रहूंगा और खाली समय में गांव के बच्चों को पढ़ाऊंगा. इससे मेरी शिक्षा का सदुपयोग भी हो जायेगा और बच्चों की सहायता भी हो जाएगी. जिन बच्चों को पढ़ाई के लिए कोचिंग जाने की जरुरत होती है अब उनको गांव से दूर जाने की जरुरत नहीं पड़ेगी."
तुलसी ने बीच में ही कहा, "भाई यह तो तुम्हारा बहुत अच्छा विचार है, तुम तो शहर जाकर नहीं बदले."
सनोज ने बात को आगे बढाया और कहा, "मैं सोच रहा हूं कि मुझे जो पेंशन मिलेगी उससे मैं गांव के उन बच्चों की सहायता करूं जिनके घर वालों के पास उनको पढ़ाने के लिए पर्याप्त पैसे नहीं हैं."

गंगा ने कहा, "सनोज तुमने शिक्षा के महत्व को अब सही समझा. अब हमारे गांव में शिक्षा की बयार बहेगी. हर घर का बच्चा शिक्षित बनेगा तथा अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेत होगा."

सनोज अगले दिन की सुबझ से ही अपने काम में लग गया और अपने भाई के बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दिया. बच्चे भी बड़ी तन्मयता से अपने पाठ को पढने में लग गए. देखते ही देखते एक महीने के अंदर गांव और पड़ोस के गांव के बच्चे सनोज के पास पढ़ने आने लगे. सनोज भी पूरी लगन से बच्चों को पढ़ाने लगा. जब वार्षिक परीक्षा का परिणाम आया तो सनोज के गांव के तीन बच्चों ने अपने जनपद में प्रथम दस बच्चों में स्थान प्राप्त किया.
सनोज की लगन को देखकर उनके पड़ोसी गांव के और दो लोग आकर स्वेच्छा से बच्चों को पढ़ाने लगे. गांव में पढ़ने वाले बच्चों की संख्या को देखकर लोगों ने आपसी सहयोग से पैसा इकट्ठा कर श्याम पट, कुर्सी और मेज की व्यवस्था कर दी. अब गांव में बाकायदा स्कूल चलने लगा. गांव के लोगों का कोचिंग का पैसा बचने लगा और बच्चों का बाहर जाकर पढ़ने से समय बचने लगा. गांव में खुशहाली का रास्ता निकल गया. बड़े बच्चे सनोज की देखा-देखी छोटे बच्चों को पढ़ाने लग गए.

महेश कटारे सुगम

(1)

कही गई न हो ऐसी ग़ज़ल कही जाये.
मैं सोचता हूं कि कैसी ग़ज़ल कही जाये.
सुब्ह का सूर्य भी कहता है भोर की ग़ज़लें,
चलो उसी के ही जैसी ग़ज़ल कही जाये.
किनारे बैठ के दरया के सोचता हूं मैं,
लहर का रूप है वैसी ग़ज़ल कही जाये.
किसी गरीब की कुटिया में रह रही है जो,
उसी का बनके हितैषी ग़ज़ल कही जाये.
सुने ग़ज़ल तो उड़े नींद उम्र भर के लिए,
नये खयाल की ऐसी ग़ज़ल कही जाये.

(2)

आपसे यूं तो शिकायत भी बहुत है मेरी.
साथ ही साथ इनायत भी बहुत है मेरी.
रूठकर दूर चला जाऊं ये मुमकिन भी नहीं,
ज़िन्दगी तुझसे अदावत भी बहुत है मेरी.
अब किसी दोस्त पै कायम न भरोसा मेरा,
मेरी इस शह से हिफ़ाज़त भी बहुत है मेरी.
आज तन्हाइयां डसतीं है किसी नागिन सी,
कौल पर जीत सलामत भी बहुत है मेरी.
हुस्न है, इश्क़ है, रुसवाईयों का आलम है,
आपको अब तो ज़रूरत भी बहुत है मेरी.

(3)

प्यार का चर्चा खुलासा कर दिया सो कर दिया.
फ़िक्र में थोड़ा इज़ाफ़ा कर दिया सो कर दिया.
रात की तन्हाइयों ने जब नहीं सोने दिया,
फोन पर जमकर तमाशा कर दिया सो कर दिया.
और की बेइज़्ज़ती करने की आदत है उसे,
नग्न उसको भी सरापा कर दिया सो कर दिया.
चांद को डांटा तो रोई, गिड़गिड़ाई चांदनी,
और तारों में उजाला कर दिया सो कर दिया.
आसमां इतरा रहा था रख दिया है रोंदकर,
इस तरह से इक धमाका कर दिया सो कर दिया.

(4)

ख़त्म होना है सफ़र, जब तक रहे, तब तक रहे.
कुछ पलों की है सहर, जब तक रहे, तब तक रहे.
ज़िन्दगी की दास्तां चलती रहेगी कब तलक,
कौन हो पाया अमर, जब तक रहे तब तक रहे.
चार दिन का साथ है फिर तो तन्हा होना ही है,
मैं नहीं हूं बेख़बर, जब तक रहे तब तक रहे.
रोज़ पीता हूं, उतर जाता नशा भी हर सुबह,
बेख़ुदी का ये असर, जब तक रहे तब तक रहे.
धूप जो छिटकी हुई है लीजिए उसका मज़ा,
ज़िन्दगी की दोपहर, जब तक रहे, तब तक रहे.
सुख हमें देती हमेशा ये बहाने बाज़ियां,
ये अगर हो या मगर, जब तक रहे तब तक रहे.

दानिश भारती

(1)

किसी के कोई काम आओ, तो मानें.
कि ख़ुद को कभी आज़माओ, तो मानें.
ख़ुशी के पलों में तो हंसते रहे हो,
मुसीबत में भी मुस्कुराओ, तो मानें.
हमेशा, चराग़ों तले है अंधेरा,
भरम ये कभी तोड़ पाओ, तो मानें.
किसी में कोई खोट क्यूं ढूंढते हो,
कभी ख़ुद को दरपन दिखाओ, तो मानें.
परों की नहीं, बात है हौसलों की,
इरादे, फ़लक तक बनाओ, तो मानें.
बनावट-नुमा ज़िंदगी छोड़ कर तुम,
हक़ीक़त से रिश्ता बनाओ, तो मानें.
मुहोब्बत करोगे, मुहोब्बत मिलेगी,
चलन है यही, सीख पाओ, तो मानें.
कई ग़मज़दा लोग 'दानिश' मिलेंगे,
उन्हें भी गले से लगाओ, तो मानें.

(2)

जीवन-खेल अजब देखा है.
कब क्या हो, ये कब देखा है.
तुझमें अपना रब देखा है,
जीने का मतलब देखा है.
सूनी आंखें, बोझल पलकें,
ये क़िस्सा हर शब देखा है.
ख़ुशियों में भी ग़म की आहट,
वक़्त बड़ा बेढब देखा है.
दिल अपना है, प्रीत पराई,
ये दस्तूर ग़ज़ब देखा है.
रिश्ते ख़ुद जुड़ने लगते हैं,
जब कोई मतलब देखा है.
क्या वो भी यूं सोचे मुझको,
नुक़्ता ग़ौरतलब देखा है.
सारी कमियां मुझमें ही थीं,
'दानिश' ख़ुद को अब देखा है.

शारिक कैफ़ी

(1)

इक दिन ख़ुद को अपने पास बिठाया हमने.
पहले यार बनाया फिर समझाया हमने.

ख़ुद भी आख़िर-कार उन्ही वादों से बहले,
जिन से सारी दुनिया को बहलाया हमने.

भीड़ ने यूंही रहबर मान लिया है वर्ना,
अपने अलावा किसको घर पहुंचाया हमने.

मौत ने सारी रात हमारी नब्ज़ टटोली,
ऐसा मरने का माहौल बनाया हमने.

घर से निकले चौक गए फिर पार्क में बैठे,
तन्हाई को जगह जगह बिखराया हमने.

इन लम्हों में किस कि शिरकत कैसी शिरकत,
उसे बुला कर अपना काम बढ़ाया हमने.

दुनिया के कच्चे रंगों का रोना रोया,
फिर दुनिया पर अपना रंग जमाया हमने.

जब 'शारिक़' पहचान गए मंज़िल की हक़ीक़त,
फिर रस्ते को रस्ते भर उलझाया हमने.

(2)

ज़मीं पर कुछ तो ऐसा था हमारा.
कि मरते दम निकलता था हमारा.

न जाने क्यों लगा ये रास्ते भर,
किसी साए पे साया था हमारा.

बहुत अच्छा बहुत ही खूबसूरत,
मगर बस घर ही अच्छा था हमारा.

सुखन कम इसलिए रक्खा कि वो शख्स,
खमोशी में ज़्यादा था हमारा.

उसी की दुश्मनी में कट गई उम्र,
तेरा मुजरिम जो चेहरा था हमारा.

ज़मी वाले तो खुद मजलूम थे सब,
खुदा से था जो शिकवा था हमारा.

बिब्लियोस्मिया

राजेश्वर वशिष्ठ

किताबें हमें हर-दम बुलाती हैं अपने पास.
कभी उनके लेखकों से हमारी पहचान होती है
तो कभी हम उनके विषय की उंगली पकड़ कर
आगे बढ़ जाना चाहते हैं
ज्ञान की अतल गहराइयों में.
उनका बदन छूते ही हम सम्मोहित हो जाते हैं-
उनकी मादक गंध से
जो उनकी स्याही और काग़ज़ से आती है,
वे शालीनता से बताती हैं –
इस गंध को बिब्लियोस्मिया कहा जाता है.
उन्हें पढ़ते हुए हमें लगता है–
हम उन्हें पढ़ रहे हैं,
असल में कुछ ही देर के बाद
हम बन जाते हैं उनकी बहुरंगी दुनिया का हिस्सा
और फिर, वे हमें पढ़ने लगती हैं.
उनकी संगत में
खुलने लगते हैं वे सारे रहस्य
जिन्हें हम वर्षों से अपने भीतर छिपाए बैठे थे.
फिर उन अनछुए अनुभवों की गठरी खोल कर
की-बोर्ड पर रक़्स करने लगती हैं हमारी उंगलियां.
सुनेत्रा,
किताबें इसी सात्विक तरीक़े से
बढ़ाती हैं अपना वंश.

(शब्द: बिब्लियोस्मिया- नई-नई छप कर आई किताब की गंध को कहते हैं. यह गंध छापे की स्याही में मिले रसायनों और काग़ज़ से आती है, जिसे पढ़ाकू लोग बहुत पसंद करते हैं. चित्र : Portrait of Lucrezia Panciatichi, c. 1545. Agnolo di Cosimo 1503-1572.)

हम लोग जो अब तक ज़िंदा हैं

सुरजीत होश बड़सली

हम लोग जो अब तक ज़िंदा हैं
सोए हैं मौत के नर्तन पे,
पर फिर भी कहां शर्मिंदा हैं.
हम लोग जो अब तक ज़िंदा हैं.
कुछ बादल की गड़गड़ रटते,
गड़गड़ में मारे जाएंगे.
कुछ धर्मोत्सवों में मत्त हुए,
भगदड़ में जान गंवा देंगे.
कुछ राजनीति की वसंत गा,
नेताओं के घर फूल उगा,
अपने जीवन की पीत ऋतु
पतझड़ में जान गंवा देंगे.
कुछ विकसित संस्कृति पाने
मरने तृष्णा के घोड़े पर,
कुछ शहर बसाने में उजड़े,
बीहड़ में जान गंवा देंगे.
कुछ अंबर पर ईश्वर तकते,
पंखों की इच्छा पाल रहे,
कुछ इन कल्पित पांखों की ही,
फड़फड़ में जान गंवा देंगे.
हम लोग जो अब तक ज़िंदा हैं,
ज़िंदा होने का भ्रम लेकर,
मुर्दों की तरह जी लेते हैं.
इस जी लेने के उत्सव भी,
हम लोगों को सुख देते हैं.
हम लोग जो अब तक ज़िंदा हैं
सोए हैं मौत के नर्तन पे,
पर फिर भी कहां शर्मिंदा हैं.
हम लोग जो अब तक ज़िंदा हैं.

आदतों पर कसी लगाम के साथ

माया मृग

एक समय के बाद शेष रहता है विद्रोह
पर खत्म हो जाती है विद्रोह की जरुरत,
एक रस्म की तरह निभाये जाने को
दोहराया जाता रहा जो, वह एक आदत थी बस.
जूते के तस्मे उल्टे बांधना
और पैन की उलटी तरफ से कुरेदना कान
सलवटों से भरी कमीज पहनकर निकल जाना
बाहर पान की दुकान तक.
आधा खुला ही छोड़ देना फ्रिज का दरवाज़ा
और पानी पीकर खाली बोतल वापस रख देना वहीं
रुमाल को फेंक देना गुत्थमुत्थ कर
मोजों को पटक देना जूतों के ऊपर ही.
सारा दिन चबाई गई चुइंग-गम को
उंगुलियों के बीच लेकर खींचना तार
और हथेलियों मे गोल कर चिपका देना बाथरूम के दरवाज़े पर
हाथ पोंछ लेना साफ-धुले परदों से.
किसी भी आवाज़ पर जवाब न देना
और और हर सवाल को बदल देना हुंह में
तकिये को आधा मोड़कर टिका सिर
ना हां में हिलता है, न ना में.
आदतों के बेलगाम होने का समय
विद्रोह का समय है
देर से समझ आया-
मैं विद्रोही नहीं हूं, आदत का शिकार हूं बस.

अनोखी सजा

रन्दी सत्यनारायण राव

चंपक वन में होली के दिन भोर से ही झुमरू बंदर अबीर और पिचकारी में रंग ले कर तैयार था. पड़ोस में रहने वाला उसका मित्र कालू टामी भी उसके साथ था. सूरज की पहली किरण को देखते ही, जानवरों के बच्चे अपनी-अपनी जगहों से निकल होली खेलने में मगन हो गए.

झुमरू और टॉमी भी समूह में शामिल हो कर रंग खेलने लगे. वातावरण में हर जगह ख़ुशी थी. खेलते-खेलते झुमरू बंदर की नजर अचानक एक पेड़ के नीचे चली गई. उसने वहां टिंकू खरगोश को रोते हुए देखा. वह अपने मित्र टॉमी को साथ लेकर उसके पास गया और उसके रोने का कारण पूछा- 'क्या बात हो गई टिंकू भाई, दोस्तों के साथ खेलने की जगह यूं पेड़ के नीचे बैठ कर क्यों रो रहे हो?'

टिंकू ने रोते हुए बताया– 'मैं सुंदर वन में रहने वाले अपने मित्र से होली खेलने के लिए उसके घर जा रहा था कि रास्ते में पीलू सियार और उसके साथियों ने मुझे घेर लिया और होली खेलने के बहाने मेरे सारे शरीर और चेहरे पर कीचड़ मल दिया, फ़िर मेरी जेब में रखे हुए पैसे और रंग लूट कर भाग गए.'

यह कह कर वह फ़िर जोर-जोर से रोने लगा. उसे ऐसी दयनीय हालत में देख, झुमरू बंदर को टिंकू खरगोश पर दया आ गई. उसने कहा–'टिंकू मत रोओ, और जाओ घर जा कर नहा–धो कर आओ.'

फिर उसने अपनी जेब में हाथ डाला. टिंकू की सहायता के लिए उसके पास कुछ पैसे कम लगे तो अपने मित्र टॉमी से कहा– ' टॉमी भाई, टिंकू को इसी समय कुछ पैसों की जरुरत होगी. मेरे पास उसकी सहायता के लिए पैसे कुछ कम पड़ रहे हैं, जिससे वह रंग खरीद कर अपने मित्र के साथ ख़ुशी-ख़ुशी होली का पर्व मना सके. क्या तुम्हारे पास कुछ पैसे हैं?'

अपने मित्र की बात सुन टॉमी ने झट अपनी जेब में हाथ डाल कर कुछ पैसे निकाल कर झुमरू के हाथ में रख़ कर कहा- 'भाई बुरे समय में काम न आए तो वह मित्र किस काम काऔर तुम तो दूसरे की सहायता कर रहे हो, यह तो परोपकार की बात हुई ना.'

नहा–धो कर आते ही झुमरू ने टिंकू के हाथ में पैसे दे कर कहा– 'भाई टिंकू, होली ख़ुशी मनाने और भाई चारे का त्यौहार है. जो हुआ उसे भूल कर, ख़ुशी-ख़ुशी रंग खरीद कर सुंदर वन जाओ और अपने मित्र के साथ होली खेल आओ.'

टिंकू खरगोश के चले जाने के बाद, झुमरू ने कालू से कहा– 'पीलू को ऐसे ही छोड़ दें तो उसका अपराधी स्वभाव और साहस बढ़ता ही जाएगा. चलो उसे पकड़ कर राजा शेरू के पास हाजिर करते हैं, उसे वे ही उचित सजा देंगे.' निर्णय करना था कि दोनों ने मिल कर पीलू को उसके अड्डे पर जा पकड़ कर राजा शेरू के पास जा खड़ा किया. उनसे सारी जानकारी ले कर राजा शेरू ने पीलू की ओर क्रोध से देखा और पूछा– 'तुम्हें किसी की खुशी छीनने में क्या आनंद मिलता है? होली जैसे पवित्र रंगोत्सव में शत्रु भी प्यार के रंग में रंग कर मित्र बन जाता है. यह पर्व सभी को स्नेह और प्यार से एक हो कर शान्ति से जीवन गुजारने का संदेश देता है. लेकिन तुमने इस पर्व की गरिमा को कलंकित करते हुए छोटे से 'टिंकू' पर बजाय रंग और अबीर लगाने के, उसे कीचड़ और गोबर से रंग दिया. साथ ही उसकी जेब में हाथ डाल कर उसके रंग और पैसे भी चुरा लिए. बताओ तुमने ऐसा क्यों किया?' पीलू राजा की क्रोध से जलती आंखों को देख भय से थर-थर कांपते हुए बोला– 'क्षमा करें महाराज, मुझसे भूल हो गई. होली के अवसर पर लोगों को लूटने का अच्छा अवसर समझ कर मैंने ऐसा किया था, क्योंकि होली के दिन रंग लगाने के बहाने पैसे लूटना आसांन था. मैं वर्ष भर इसी दिन की प्रतीक्षा में रहता था.

इस दिन मुझे लूट से इतने पैसे मिल जाते थे कि आसानी से वर्ष भर गुजर बसर हो जाता था. फिर आज से पहले कभी पकड़ा भी नहीं गया था इसलिए खतरे का आभास तक नहीं हुआ. अब की बार छोड़ दीजिये हुजूर.' उसकी बात सुन राजा शेरू ने फ़ैसला सुनाते हुए कहा– 'पीलू ने अपनी ग़लती स्वीकार कर साहस और ईमानदार होने का प्रमाण दिया है, वर्ना आज कौन होगा जो अपने किये को स्वीकार करेगा. इसलिए आज इस पावन पर्व का सम्मान करते हुए पीलू को एक अनोखी सजा दे रहा हूं और वह यह कि आज की शाम चंपक वन के सभी जानवरों को होली मिलन समारोह में 'छोला –भटूरा' और 'माल-पुआ' के भोज में आमंत्रित कर, उनसे अपनी किए की क्षमा मांग, अच्छा नागरिक बनने की शपथ लेगा.'

सब राजा शेरू के फ़ैसले से खुश हो गए, होली का उत्साह फिर परवान चढने लगा, लेकिन पीलू सियार, और उसके साथी दिन भर होली खेलना भूल कर, होली मिलन और भोज के आयोजन की व्यवस्था करने में लगे रहे. शाम होते ही सब का बड़े प्यार से स्वागत कर, अपने किए पर क्षमा मांग उन्हें 'छोला–भटूरा' और 'माल-पुआ' परोसने में लग गए. इस में भी पीलू सियार और उसके साथियों द्वारा, जानवरों साथियों को छोला-भटूरा, और 'माल-पुआ' परोसते समय विचित्र आनंद का बोध हो रहा था, जैसे उनके सर से बहुत बड़ा बोझ उतर गया हो. सब के खा चुकने के बाद पीलू सियार और उसके साथियों ने, जानवरों से विशेष कर टिंकू ख़रगोश से अपने किए की क्षमा मांग, सभी के गले मिल, हमेशा के लिए अच्छा नागरिक बनने की शपथ ली. सभी उसके और उसके साथियों के द्वारा बना कर खिलाए गए स्वादिष्ठ पकवानों की प्रशंसा करते चल पड़े. टिंकू की आंखों में झुमरू और टॉमी के प्रति कृतज्ञता के भाव तिर आये. दोनों से गले मिल कर उनके काम की सराहना की.

खड़क - खड़क

त्रिलोक सिंह ठकुरेला

मुन्ना चौंका, बाहर आया,
हुई द्वार पर खड़क-खड़क.

इधर उधर मुन्ना ने देखा,
खाली थे दर और सड़क.

छत पर बैठी एक चिरैया,
झूम रही थी फड़क फड़क.

चिड़िया, चौखट क्यों खटकाई,
मुन्ना बोला कड़क-कड़क.

पहले तो चिड़िया घबराई,
दिल में हो गयी धड़क-धड़क.

मुन्ना मुझे दोष मत देना,
चिड़िया बोली भड़क-भड़क.

मैं अपनी मस्ती में खुश हूं,
मुझसे मत कर तड़क-तड़क.

आकर हवा द्वार पर तेरे,
करती रहती खड़क-खड़क.

भाई, इन चुभती बातों से
मन में होती रड़क-रड़क.

जीना है तो जियो प्यार से,
क्यों जीना बन अड़क-अड़क.

ईवीएम वाशिंग मशीन में धुली – चुनौती स्वीकार नहीं की

समीक्षक: अंकित राजपूत

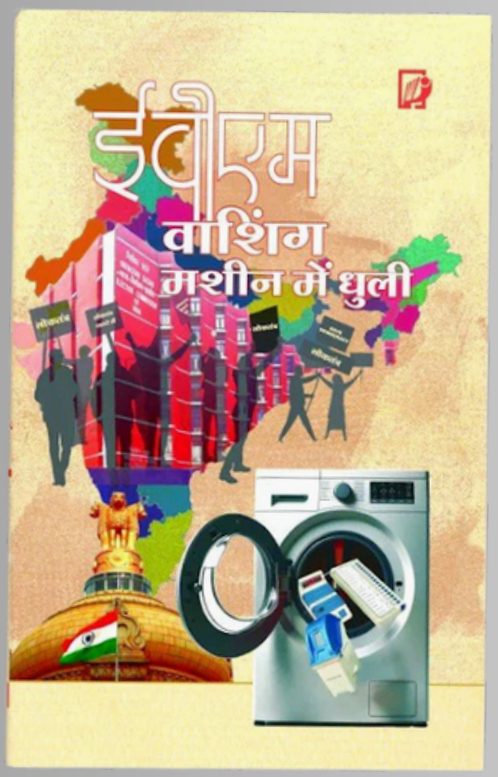

पुस्तक: ईवीएम वाशिंगमशीन में धुली, लेखक: संजय कुमारसिंह, पृष्ठ 148, मूल्य: रु. 320.00, प्रकाशक: प्रवासी प्रेमपब्लिशिंग इंडिया, गाजियाबाद

वरिष्ठ पत्रकर, संजय कुमार सिंह की तीसरी पुस्तक, ईवीएम वाशिंग मशीन में धुली-देश की मौजूदा राजनीतिक स्थिति का चित्रण है. संजय का कहना है कि ईवीएम के खिलाफ भाजपा नेताओं की दो किताबें हैं और उन्हीं दिनों इसे हैक करके दिखाया गया था. सत्ता में आने के बाद भाजपा ने पल्टी मारी और अब इसे ठीक बताती है. अपनी ही शिकायतों को भूलकर और दूर किये बिना. ईवीएम की निष्पक्षता सुनिश्चित करना चुनाव आयोग और सरकार का काम है. अब दोनों एक ही हैं और ईवीएम का उच्चारण करते ही भाजपा का पूरा इको सिस्टम विरोध पर उतरा आता है. ऐसे में इस पुस्तक में ढेरों पुरानी कहानियां हैं जो पुस्तक को विश्वसनीय बनाती है.

दूसरी ओर सरकार और चुनाव आयोग तमाम शिकायतों के बावजूद इस पर वार्ता तक करने के लिए तैयार नहीं हैं. सोशल मीडिया पर लोग सवाल ऐसे पूछते और जानकारी देते हैं जैसे सारी चीजें वही जानते हैं. सच्चाई यह है कि पुस्तक में तमाम सवालों के जवाब हैं जिसे वे पढ़ेंगे नहीं. भाजपा या सरकार या चुनाव आयोग ने ईवीएम से संबंधित शिकायतों को दूर करने के लिए कुछ नहीं किया है. इसलिए पाठकों को सच्चाई बताना जरूरी है और यह पुस्तक उसी कोशिश में एक सफल प्रयास है.

इस लिहाज से इसका समर्पण उल्लेखनीय है, हिन्दुत्व की आंधी में बह रही देश की जनता को यह बताने के लिए कि चुनाव आयोग की निष्पक्षता और लेवल प्लेइंग फील्ड लोकतंत्र की बुनियादी जरूरत है. भाजपा ईवीएम के खिलाफ थी सत्ता में आने के बाद उसकी संरक्षक क्यों बन गई. इस पुस्तक में उन सवालों को उजागर किया गया है जिन्हें समय के साथ दबा दिया गया. क्या ईवीएम वाकई सुरक्षत है, क्या मतदाता का मत सही गिनती तक पहुंचता है, क्या कोई भी प्रणाली अपराजेय हो सकती है? यह पुस्तक तकनीकी, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से इस बहस को सामने रखती है. इसमें विपक्ष के आरोप, तकनीकी विशेषज्ञों की राय और आम नागरिकों की चिंता को प्रामाणिक तथ्यों और घटनाओं के साथ जोड़ा गया है. यह पुस्तक न सिर्फ एक तकनीकी उपकरण और उसके काम करने के सलीके की कहानी है, बल्कि एक ऐसे लोकतंत्र की भी कथा है जिसे भरोसे और पारदर्शिता की तलाश है.

'आप जानते हैं कि ईवीएम की खामियों को दूर करने के लिए कुछ नहीं किया गया है और इसका बचाव किया जाता है. स्थिति बिगड़ी तो चुनाव आयोग ने ईवीएम हैक करके दिखाने की चुनौती दी थी और यह तथ्य है कि जो शर्तें थीं उनके तहत कोई हैक करने को तैयार नहीं हुआ और किसी ने चुनौती स्वीकार नहीं की. इसके बाद से ईवीएम समर्थकों को यह कहने का मौका मिल गया कि हैक करने की चुनौती किसी ने स्वीकार नहीं की जबकि इसका मुख्य कारण यही था कि चुनाव आयोग अपनी मशीन देने को तैयार नहीं है और जो शर्तें हैं उससे हैक करना साबित करने में समय ज्यादा लगेगा. दूसरी ओर, पहले हैक करके दिखाने वाले को जेल भेजने का डर भी है. इसीलिए आम आदमी पार्टी ने हैक करके दिखाने का काम दिल्ली विधानसभा में किया और चूंकि मशीनचुनाव आयोग ने नहीं दी थी इसलिए, यह कहा जा सकता है कि वह चुनाव आयोग की मशीन नहीं थी. इसलिए जो मशीन हैक की गई उसकी नहीं है.

लेखक के अनुसार, यह भारत देश में ही हो सकता है कि चुनाव कराने वाली ईवीएम ही नहीं, चुनाव आयोग की भी विश्वसनीयता संदेह के घेरे में है, अनिल मसीह जैसे चुनाव अधिकारी के खिलाफ कार्रवाई नहीं हुई फिर भी ईवीएम या चुनाव आयोग की निष्पक्षता साबित करने की चिन्ता किसी को नहीं है और तमाम आरोपों के बावजूद मशीन चल रही है और कोई खास शिकायत भी नहीं है. ऐसे समय में यह किताब, ईवीएम वाशिंग मशीन में धुली- भाजपा की खास राजनीति को उजागर करती है और बताती है कि सत्ता में आने के बाद भ्रष्ट घोषित और आरोपित भिन्न दलों के तमाम नेताओं को पार्टी में शामिल कर महत्वपूर्ण पद देने वाली पार्टी ने जैसे नेताओं को वॉशिंग मशीन में धोया है वैसे ही ईवीएम को भी धो लिया है और जो मशीन सत्ता में आने से पहले लोकतंत्र के लिए जोखिम और छेड़छाड़ करने योग्य थी वह अब बिल्कुल ठीक है. पुस्तक में लेखक ने मशीन के अविश्वसनीय होने के तमाम उदाहरण दिये हैं और मामले गिनाये हैं जो लंबे समय तक इस पर नजर रखने के कारण पुस्तक रूप में पेश किये जा सके हैं. पुस्तक का प्रकाशन प्रवासी प्रेम पब्लिशिंग इंडिया ने किया है और इसे अमेजन और फ्लिपकार्ट से भी प्राप्त किया जा सकता है.

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

रचना आमंत्रण

अंतर्राष्ट्रीय, हिंदी त्रैमासिक ऑन लाइन पत्रिका ''पहचान'' हेतु आप भी रचनाएं भेज सकते हैं.

आलेख, समीक्षा, साक्षात्कार, शोध परक लेख, व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, लोक साहित्य, बाल साहित्य, कविता, गीत, कहानी, लघु कथा आस्था, धरोहर, इतिहास, कला, विज्ञान, स्वास्थ्य आदि साहित्य की सभी विधाओं में रचनाओं का स्वागत है.

रचनाएं वर्ड फाइल में अपनी तस्वीर और परिचय सहित भेजें. लेख के लिए 800 से 1,000 और कहानी के लिए अधिकतम शब्द सीमा 1600 शब्द है.

यदि आप अपना खींचा कोई चित्र पत्रिका के कवर पेज या फिर तिमाही चित्र चयन के लिए विचारार्थ भेजना चाहें तो अपने परिचय के साथ चित्र के बारे में बताते हुए ई – मेल कर सकते हैं.

संपादक मंडल का निर्णय अंतिम निर्णय होगा, इसमें विवाद की गुंजाईश नहीं होगी.

editor@pehachaan.com